कला शिक्षा

# कला कुञ्ज

कक्षा 9

कक्षा 9

कला कुञ्ज

# कला कुन्ज

कक्षा–9 (चित्रकला की पुस्तक)

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

BSER

# पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

**पुस्तक – कला कुन्ज कक्षा–9 (चित्रकला की पुस्तक)**


**संयोजक :–** डॉ॰ अमित राजवंशी, व्याख्याता चित्रकला
राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर

**लेखकगण :–**

1. दुष्यंत त्रिपाठी, व्याख्याता संगीत
   एस.डी. राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर, अजमेर
2. श्रीमती अमिता अग्रवाल, व्याख्याता संगीत
   अंध विद्यालय, अजमेर
3. निरंजन कुमार, व्याख्याता चित्रकला
   राजकीय ओसवाल जैन उ.मा.वि. अजमेर
4. संकल्प दलवी, सचिव
   नाद साधना इंस्टीट्यूट फॉर इंण्डयन म्यूजिक एण्ड
   रिसर्च सेन्टर, जयपुर


BSER

# प्रस्तावना

मानव जीवन में कलाओं का श्वास–प्रश्वास का अंतरंग संबंध है। विविध कलाएँ किसी समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। शैक्षिक व्यवस्था में जब कलाओं के पृष्ठ पढ़ाए जाते है तो ये कलाएँ लिखित व प्रकाशित सामग्री के रुप में एक नव पल्लवित पीढ़ी की सृजनता, कल्पनाशीलता, बौद्धिकता तथा परम्परा से जुड़ाव में विद्यार्थियों को स्पंदित करती हैं। अतः प्रकाशक व लेखक का दायित्व हो जाता है कि संबंधित साहित्य में कलात्मक सृजनता को तथ्यात्मक व प्रभावी रुप में नई पीढ़ी के समक्ष रखें जब यह प्रक्रिया माध्यमिक स्तर तक के विद्यार्थियों हेतु निर्धारित हो तो इसकी अभिव्यक्ति एवं संप्रेषण में भाषा की सरलता व विद्यार्थियों हेतु आकर्षक प्रिंट डिजाइन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

मनुष्य की नकारात्मक प्रवृतियों के शमन व शोध हेतु जीवन में कलाओं की नितांत आवश्यकता है। माध्यमिक शिक्षा के नीति निर्माताओं का मत है कि विद्यार्थी के स्तर पर कलाओं के एक समेकित स्वरुप को आकर्षक ढंग से विद्यार्थी के समक्ष रखने से बोधगम्यता सरस, सरल व प्रभावी हो सकती है, साथ ही शास्त्रीय पक्ष परम्परा से जुड़ा हो एवं भाषा सरल व चित्रों के माध्यम से स्पष्ट की जाए एवं समग्र सिद्वान्त के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान की कलात्मक अभिव्यंजनाओं को भी समाहित किया जाए।

इस हेतु राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा नवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए ''कला शिक्षा'' विषय के अन्तर्गत विशुद्ध भारतीय कलाओं– चित्रकला, संगीत, नृत्य व नाटक की शास्त्रीय व लोक शैलियों का सामान्य परिचय अनूठी भावाभिव्यंजना तथा रेखीय व चित्रात्मक अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

विभिन्न अध्यायों में चित्रकला के तत्व माध्यम, तकनीक व राजस्थान की लोक चित्रकलाओं, संगीत के तत्व, वाद्य व वाद्य भेद, राजस्थानी लोक संगीत के गायन, वादन, नृत्य पक्ष तथा नाटक, रंगमंच एवं अभिनय के भेद व लोक नाट्य आदि विषयों को समाहित किया गया है।

पुस्तक को प्रभावी, ज्ञानवर्धक व रोचक बनाने हेतु इंटरनेट व गूगल सर्च इंजन का चित्रों के सहयोग हेतु हार्दिक आभार व्यक्त करना अत्यंत आवश्यक है।

पुस्तक लेखन में राष्ट्रीय नव निर्माण हेतु विद्यार्थी के साहित्यिक जागरण अभियान को प्रारंभ किया गया है, प्रत्येक विषय पर अत्यंत संक्षेप में 'गागर में सागर' भरने का यत्न है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर का यह साधु प्रयास अन्य राज्यों के बोर्ड/मंडलों के लिए भी निश्चित ही अनुकरणीय हो पाएगा।

आशा एवं विश्वास के साथ।

संयोजक

# अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| 1. | चित्रकला के तत्व | 1 – 14 |
| 2. | चित्रकला के माध्यम एवं तकनीक | 15 – 27 |
| 3. | राजस्थान की लोक कलाएँ | 28 – 40 |
| 4. | अभ्यासार्थ रेखांकन | 41 – 46 |
| 5. | संगीत के पारिभाषिक शब्द | 47 – 53 |
| 6 | भारतीय संगीत में वाद्यों के प्रकार | 54 – 61 |
| 7. | राजस्थान का लोक संगीत | 65 – 74 |
| 8. | नाट्य कला का परिचय | 75 – 86 |

# चित्रकला के तत्व

मानवीय भावों की अभिव्यक्ति कला है किन्तु यह हमारी दैनिक अभिव्यक्ति से अलग है। दैनिक जीवन में हम अपने भावों को सहज रूप में शारीरिक चेष्टाओं अथवा वाणी के द्वारा व्यक्त करते हैं वह साधारण अभिव्यक्ति है। कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये व्यंजना के माध्यम जैसे भाषा, शारीरिक चेष्टाओं, रंगों, आकारों आदि का कलात्मक प्रयोग आवश्यक है। कला का मूल उद्देश्य एक ऐसे समानान्तर संसार का सृजन है जिसमें स्वचेतन मनुष्य अहं–भाव से मुक्त हो अपने को अनन्त रूपों में देख सके।

''कलांति ददातीति कला'' अर्थात् सौंदर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु का नाम कला है। प्राचीन काल में शिल्प में कुशलता ही कला मानी जाती थी और कला के लिये शिल्प शब्द का प्रयोग किया जाता था। कला शब्द का यथार्थवादी प्रयोग प्रथम शताब्दी में आचार्य भरतमुनि ने अपने 'नाट्य–शास्त्र' में शिल्प और कला दोनों शब्दों का अलग–अलग प्रयोग किया।

**''न तज्जान न ताच्छिल्पं न साविधा न साकला''**

अर्थात ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसमें कोई शिल्प नहीं, ऐसी कोई विद्या नहीं जो कला न हो। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ विष्णधर्मोत्तर पुराण के चित्र सूत्र के अनुसार,

**''कलानां प्रवरं चित्रं, धर्म कामार्थमोक्षम्।**
**मांगल्यं प्रथमं ह्योतद्, गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।।**

अर्थात् कला से मानव जीवन के चारों पुरूषार्थों धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यूरोप में कलाओं के लिये 'शिल्प' के समान शब्द 'तेख्ने' का प्रयोग होता था। 13वीं शताब्दी में अंग्रेजी के शब्द आर्ट का विकास प्राचीन लैटिन शब्द आर्स से हुआ। जिसका अर्थ भी बनाना, पैदा करना या संयोजित करना है, जो कला को व्यक्त करता है। महर्षि पाणिनी ने कला को कारू और चारू कला में वर्गीकृत किया।

कारू या उपयोगी कला जैसे काष्ठ कला, सिलाई कला, पाक कला, बुनाई कला आदि इनसे हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। चारू या ललित कलाओं में पाँच कलायें निर्धारित की गई है। चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, संगीत एवं काव्य। इन कलाओं में सृजनात्मकता, मौलिकता तथा भावाभिव्यक्ति का स्थान प्रमुख होता है। इनमें प्रथम तीन रूपप्रद कलाओं के अन्तर्गत आती है क्योंकि यह दृश्य कला है। रूपप्रद का शाब्दिक अर्थ है रूप प्रदान करने वाला/ अर्थात ऐसी कलाएँ जिनमें किसी पदार्थ को इस प्रकार रूप दिया जाये जिससे पदार्थ अपना अस्तित्व खोकर अन्य रूप में ही समाहित हो जाय। चित्रकला में रंग विभिन्न रूप ग्रहण करते है तथा मूर्तिकला जिसमें मिट्टी, प्लास्टर, लकड़ी आदि विभिन्न रूप ग्रहण करता है।

चित्रकलाः किसी भी समतल धरातल पर रेखाओं तथा रंगों के द्वारा लम्बाई, चौड़ाई, गोलाई एवं ऊँचाई को अंकित कर किसी आकृति का सृजन करना चित्रकला है। चित्र एक संयोजन है। किसी भी कलाकृति में बनी वस्तु वास्तव में वस्तु नहीं वरन् रेखा, रंग आदि का सुनियोजित समूह है। किसी भी चित्र को देखने पर हमें मात्र वह विषय ही आकर्षित नहीं करना बल्कि उस चित्र में किस प्रकार का रेखांकन है, किस तरह से रंगों का प्रयोग किया है व विषय को किस प्रकार चित्र–भूमि पर संयोजित किया है आदि तत्व आकर्षित करते हैं। कलाकृति की रचना में माध्यम और चित्रण तत्वों दोनों का प्रयोग होता है। जैसे कागज, केनवास, तेल रंग, जलरंग आदि माध्यम हैं। किन्तु रेखा, आकार, हल्का लाल रंग, गहरा पीला रंग की बात करते हैं तो यह चित्र के तत्व कहलाते हैं। प्रत्येक तत्व किसी न किसी माध्यम द्वारा ही व्यक्त होता है। संयोजन में विविधता इन्हीं तत्वों के प्रयोग करने की विधि से उत्पन्न होती है। चित्रकला के निम्नलिखित तत्व हैंः–

**1. रेखा 2. रूप 3. वर्ण 4. तान 5. पोत 6. अन्तराल**

## रेखा

अबाध गति से बिन्दुओं को अंकित करने से रेखा बनती है। ज्यामिति के अनुसार रेखा दो बिन्दुओं के बीच की सूक्ष्म दूरी को कहते है। यह गति की दिशा को निर्देशित करती है। किन्तु कलात्मक रेखा इससे भिन्न होती है। यह किसी यन्त्र की सहायता से खींची न होकर मुक्तहस्त स्वतन्त्रतापूर्वक खींची होती है। इस रेखा में वैयक्तिकता एवं विविधता होती है। यह दुर्बल अथवा प्रवाहपूर्ण, कम्पित अथवा सधी हुई, मोटी अथवा बारीक, कोमल किनारों वाली अथवा कटी–फटी हो सकती है। यह रूप की अभिव्यक्ति एवं प्रवाह को अंकित करती है। (चित्र सं. 1, 2)

### रेखा के प्रभाव

रेखाओं के प्रभाव उनकी अंकन विधि एवं दिशाओं पर आधारित रहते हैं। इनका उद्देश्य चित्र में भावों को व्यक्त करना होता है। सरल रेखाओं में निश्चय और कठोरता के भाव प्रदर्शित होते हैं। अत्यधिक मुड़ी हुई रेखाओं में शक्ति और क्रियाशीलता नज़र आती है। (चित्र सं. 3 ) अधिक टेड़ी–मेड़ी रेखाएँ आघात पहुँचाती हैं। नीचे की ओर गिरती हुई वर्तुल रेखाऐं शान्ति शिथिलता, निष्क्रियता एवं निराशा आदि व्यक्त करती हैं। (चित्र सं. 4) यह रेखाओं के सामान्य गुण हैं। रेखाऐं विभिन्न प्रकार की होती हैं। सभी का प्रभाव भी भिन्न होता है। जैसेः–

**1. सीधी लम्बवत रेखा**– यह रेखा खड़े होने का भाव देती है। इसके अतिरिक्त दृढ़ता, गौरव, उच्चता, संतुलन, आकांक्षा, शक्ति, स्थायित्व का भाव भी प्रकट होता है। (चित्र सं. 5 )

**2. सीधी पड़ी हुई**– यह रेखा चित्र में बने आकारों को आधार प्रदान करती है। यह स्थिरता, विस्तार, निश्चलता, निष्क्रियता और सन्तुलन का भाव व्यक्त करती है। (चित्र सं. 6 )

**3. कर्णवत या आड़ी रेखाएँ**– नृत्य या नाटक के दौरान या दौड़ते–चलते समय बनने वाली मुद्राओं में रेखाऐं कर्णवत स्थिति में नजर आती हैं। यह रेखाऐं उतेजना, बैचेनी, व्याकुलता के भाव को प्रदर्शित करती हैं। (चित्र सं. 7 )

**4. कोणात्मक रेखायें**– संघर्ष, तीव्रता, असुरक्षा, व्याकुलता को प्रदर्शित करती हैं। (चित्र सं. 8 )

**5. एक पुंजीय रेखायें**– प्रकाश, शक्ति, स्वच्छन्दता, शोभा, स्वदेश प्रेम, प्रसार का भाव व्यक्त करती हैं। (चित्र सं. 9. 10)

**6. चक्राकार रेखायें**– लयपूर्ण गति, उत्तेजना एवं भय को प्रदर्शित करती है। (चित्र सं. 11. 12)

**7. प्रवाही रेखायें**– क्रमिक परिवर्तन, गति, प्रवाह एवं लावण्य, माधुर्य के भाव को अभिव्यक्त करती हैं। (चित्र सं. 13. 14)

**रेखांकन के प्रकार**

**स्वतन्त्र रेखांकन**– जब हम किसी भी वस्तु को देखते हैं तो उसका प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। इसमें मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव को रेखांकित करना होता है। वस्तु का मस्तिष्क पर प्रभाव हर कलाकार पर भिन्न होता है। (चित्र सं. 15)

**स्मृति रेखांकन**– इसमे पूर्व में देखी गई आकृति का रूप देखे बिना यथावत चित्रण करना होता है। (चित्र सं. 16 )

**प्रतिरूपात्मक रेखांकन**– इसमें वस्तु जैसी दिखती है वैसा बनाने का प्रयत्न करते है। रेखा की सहायता से छाया, प्रकाश तथा क्षय–वृद्धि का प्रभाव दिखाया जा सकता है। (चित्र सं. 18)

**यांत्रिक रेखांकन** – इसमे रेखाये यन्त्रों की सहायता से नपी तुली होती है। यह यांत्रिक चित्र, नक्शे आदि बनाने में सहायक होता है। इनका कलात्मक प्रभाव नहीं होता। (चित्र सं. 19)

**सीमान्त रेखांकन**– इसमे छाया–प्रकाश द्वारा सीमा रेखा का ज्ञान किया जाता है। ये आकार बोधक रेखाएँ होती है।

**सांकेतिक**– चित्र भूमि पर अन्तराल एवं वस्तु के आयतन को जानने के लिए अंकन का सहारा लिया जाता है। (चित्र सं. 17)

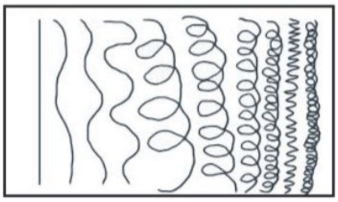

(चित्र सं. 1)

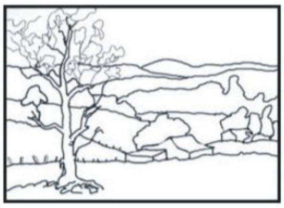

(चित्र सं. 2)

(चित्र सं. 3)

(चित्र सं. 4)

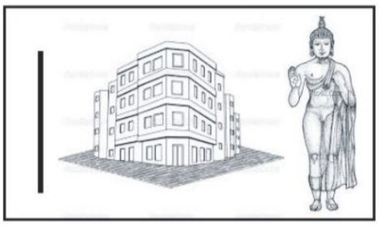

(चित्र सं. 5)

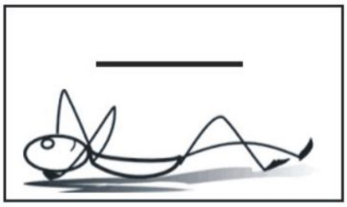

(चित्र सं. 6)

(चित्र सं. 7)

(चित्र सं. 8)

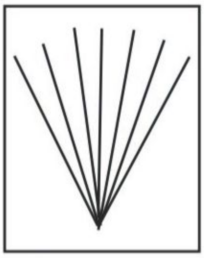

(चित्र सं. 9)

(चित्र सं. 10)

(चित्र सं. 11)

(चित्र सं. 12)

(चित्र सं. 13)

(चित्र सं. 14)

(चित्र सं. 15)

(चित्र सं. 16)

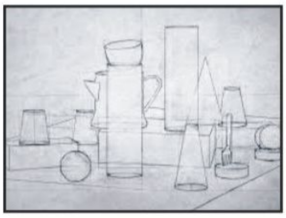

(चित्र सं. 17)

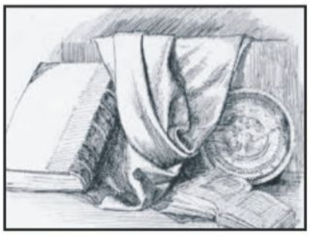

(चित्र सं. 18)

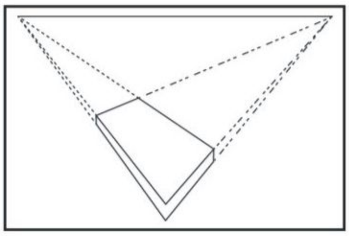

(चित्र सं. 19)

## 2. रूप

रूप के बिना दृश्य कलाओं का अस्तित्व ही नहीं है। रूप का निर्माण विषय के अनुसार आकृतिमूलक, यथार्थ या फिर अमूर्त भी हो सकता है। यह सब चित्रकार की शैली या अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है।

**रूप की परिभाषा**– किसी भी वस्तु या पुंज की आकृति ही रूप है, जो अन्तराल के किसी भाग को चारों ओर से घेरती है। इसका अपना निश्चित आकार तथा वर्ण होता है। कला में आकृति को किसी निश्चित उद्देश्य से सृजित या विकसित किया जाता है।

**रूप का वर्गीकरण** – साधारणतया रूप दो प्रकार के होते है :– (चित्र सं. 20)

**1. नियमित (सममित)     2. अनियमित (असममित)**

### 1. नियमित (सममित)

यदि किसी रूप को मध्य में रेखा द्वारा दो भागों में विभक्त किया जाए और दोनों भाग एक दूसरे के विलोम आकृति वाले हों ऐसे रूप नियमित रूप कहलाते हैं। (चित्र सं. 21)

### 2. अनियमित (असममित)

असममित रूप में मध्य में रेखा द्वारा विभाजित करने पर दोनों भागों में समानता नहीं होती है। जैसे विषम त्रिभुज, शंख आदि। ऐसे रूप ज्यादा रूचिकर एवं सृजनात्मकता वाले होते हैं। (चित्र सं. 22)

**रूप के प्रभाव**–

रूप का प्रभाव इनके दृष्टिगत तथा आकारगत भार के कारण होता है। रूप के निम्न प्रभाव हो सकते है :

1. आयताकार– शक्ति तथा एकता (चित्र सं. 23 अ)
2. त्रिभुजाकार– शाश्वतता, सुरक्षा तथा विकास (चित्र सं. 23 ब)
3. विलोम त्रिभुजाकार– लिप्तता तथा अशान्ति (चित्र सं. 23 स)
4. अण्डाकार– लावण्य, सौन्दर्य, नित्यता, सृजनात्मकता (चित्र सं. 23 द)
5. वृत्ताकार– समानता, विशालता, पूर्णता, आकर्षण, गति (चित्र सं. 24 य)

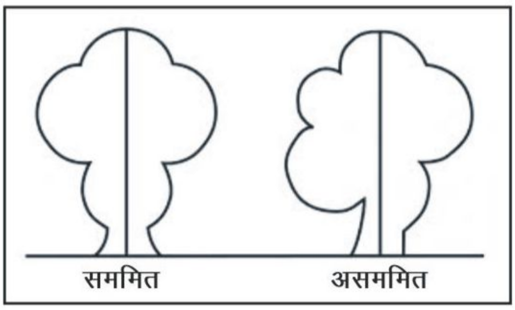


चित्र सं. 20

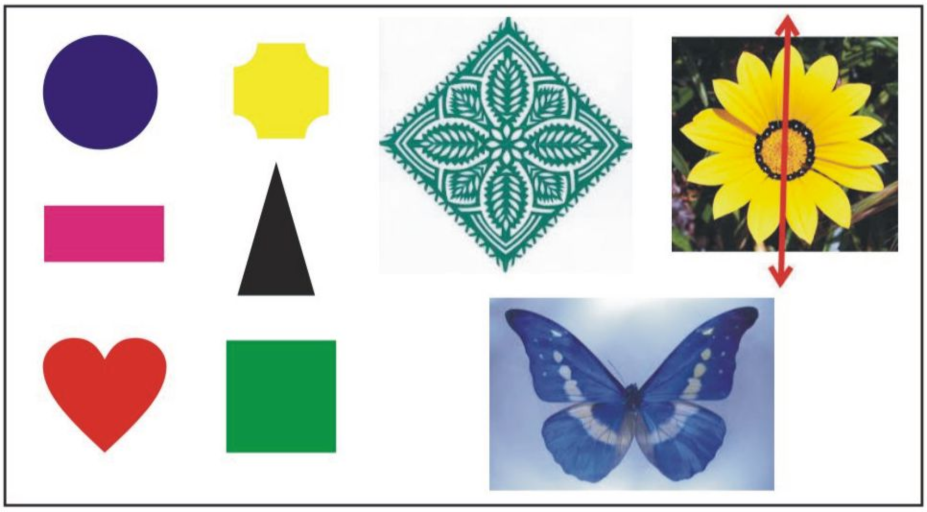

चित्र सं. 21

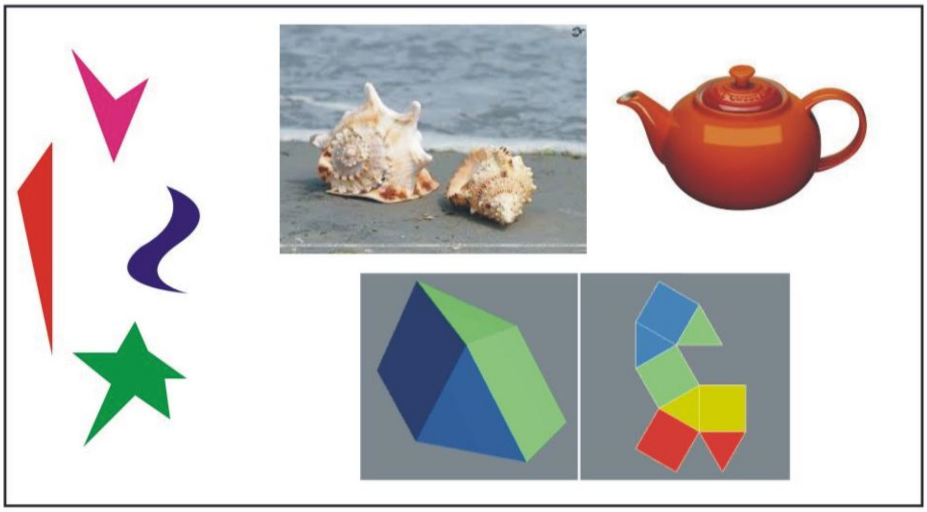

चित्र सं. 22

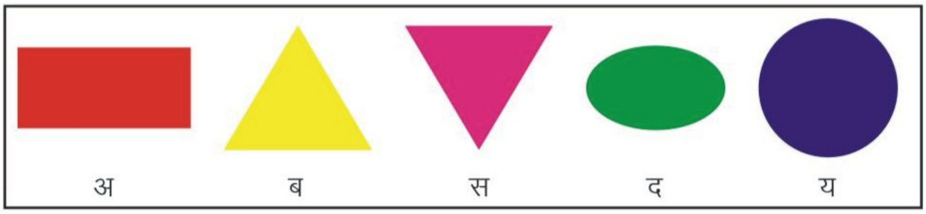


चित्र सं. 23

## 3.वर्ण

वर्ण या रंग किसी भी कलाकृति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। रंगों के प्रयोग से कलाकृति में आकर्षण आ जाता है। वर्ण बोध हमारे दृश्यात्मक अनुभव का महत्वपूर्ण पक्ष है। प्रकाश वर्ण के अनुभव का माध्यम है जो वस्तु से प्रतिबिम्बित होकर अक्ष–पटल तक पहुँचता है। प्रकाश परिवर्तन के साथ ही वस्तु के वर्ण में भी परिवर्तन आ जाता है। पीले प्रकाश में वस्तुओं पर पीले रंग का प्रभाव आ जाता है। रंगहीन वस्तुओं यथा साबुन के बुलबुले, पानी पर तैरता तैल, पारदर्शक काँच के गिलास में पानी आदि पर भी प्रकाश एवं आस पास की वस्तुओं के रंगों का प्रभाव आ जाता है। रंगो का अपना प्रभाव होता है जो मानव की मानसिक भावनाओं को प्रभावित करने की शक्ति रखता है।

**वर्ण की परिभाषा–**

वर्ण प्रकाश का गुण है इसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता बल्कि अक्षपटल द्वारा मस्तिष्क पर पड़ने वाला एक प्रभाव है।

**वर्ण के गुण–** वर्ण के तीन प्रधान गुण होते है।

**1. रंगत** **2. मान अथवा बल** **3. सघनता अथवा घनत्व**

**1. रंगत–** वर्ण का स्वभाव रंगत है। जैसे पीलापन, लालपन, नीलापन होता है जिसकी सहायता से नीले, पीले, तथा लाल के अन्तर को दर्शक जान पाता है। (चित्र सं. 24 अ)

**2. मान अथवा बल–** मान रंग के हल्के–गहरेपन को कहते हैं। किसी रंग मे सफेद रंग मिलाने से मान बढ़ता है तथा काला मिश्रित करने से मान घटता है। इस प्रकार सफेद व काले की मात्रा द्वारा विभिन्न मान प्राप्त किये जा सकते है। चित्र में प्रकाश एवं अन्धकार का उचित अनुपात रखा जाता है। यह विभिन्न रंगतों के मान से ही प्राप्त किया जाता है। (चित्र सं. 24 ब)

**3. सघनता अथवा घनत्व–** यह रंग की शुद्धता से उत्पन्न होता है। जो वर्ण जितना शुद्ध होगा उतनी ही उसकी सघनता अधिक होगी। मिश्रित वर्णों में सघनता कम होगी। किसी रंग मे उदासीन धूमिल रंग मिलाने से सघनता कम होगी इस प्रकार तीव्र, हल्का, लाल सघनता मान व रंगत का सूचक है। (चित्र सं. 24 स)

**वर्ण भेद–**

**1. मुख्य रंग–** जो रंग अन्य, किसी मिश्रण से प्राप्त नही किये जा सकते मुख्य रंग कहलाते हैं जैसे लाल, नीला तथा पीला पूर्ण तथा शुद्ध है। ये पदार्थ की मुख्य रंगते है प्रकाश की मुख्य रंगतें हरी, लाल, बैंगनी है। (चित्र सं. 25)

**2. द्वितीय रंग–** किसी दो (प्रधान) मुख्य रंगतों को मिलाने से जो रंग प्राप्त होगा द्वितीय रंगत कहलाता है। जैसे लाल़–नीला़ बैंगनी, लाल–पीला नांरगी, नीला– पीला हरा (चित्र सं. 25)

**3. पूरक या विरोधी वर्ण–** दो मुख्य रंगतों को मिलाने से प्राप्त द्वितीय रंगत शेष बची मुख्य रंगत एक दूसरे के पूरक या विरोधी वर्ण कहलाते है। यह वर्ण चक्र में आमने–सामने पड़ते हैं। (चित्र सं. 25)

**वर्ण के प्रभाव–**

रंगों का हमारे मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इनका चयन भी हमारी भावनाओं से जुड़ा है। किसी भी रंग को पसंद–नापसंद करना व्यक्तिगत भावनाओं एवं स्वभाव पर निर्भर होता है। रंग हमारी भावनाओं को उद्वेलित करने की शक्ति रखते है वर्ण के इन्ही प्रभावों के कारण इन्हें ऊष्ण, शीतल दो भागों मे बाँटते है। जिन रंगो की तरंग गति बहुत अधिक होती है और जो सूर्य तथा आग के रंगो के समीप होते है जिनको देर तक देखने से आँखों को थकान अनुभव होती है गर्म (ऊष्ण) रंग कहलाते हैं जैसे पीला, नांरगी, लाल आदि। इन्हें समीपवर्ती वर्ण भी बोलते हैं। (चित्र सं. 26) इसके विपरीत जो वर्ण प्रकृति में देखे जाते हैं जैसे– वृक्ष, पर्वत, बर्फ, जल और आकाश आदि से है जिनको देर तक देखने से थकान नही हो शीतल रंग कहलाते है। जैसे नीला, हरा इन्ही प्रभावों के कारण शीतल रंग पृष्ठगामी प्रतीत होते है। (चित्र सं. 26) रंग के प्रभाव इस प्रकार है।

**(1) लाल**– सर्वाधिक उत्तेजक एवं आकर्षक, सक्रिय एवं आक्रामक है। स्त्रियों में लोकप्रिय है। उत्तेजना, प्रसन्नता, उल्लास, राष्ट्रप्रेम, युद्व, भय, शंका, क्रोध, कामुकता, आवेग, ओज आदि का प्रतीक है। गर्म रंग है।

**(2) पीला**– प्रसन्नता, गर्व, प्रफुल्लता, समीपता। यह गर्म प्रभाव वाला रंग है।

**(3) नीला**– शीतलता, राजस्व, सत्यता, आनन्द,रात्रि आकाश, निराशा, दुःख, मलिनता, दूरी, मानसिक अवसाद स्थिरता एवं दृढ़ता। यह शीतल प्रकृति का रंग है।

**(4) हरा**– यह ताजगी, शिथिलता, बसन्त, प्रजनन, मनोहरता, विश्राम, सुरक्षा, विकास, प्रफुल्लता, प्रचुरता, ईर्ष्या, अशक्तता का प्रतीक है। यह शीतल वर्ण है।

**(5) नांरगी**– ज्ञान, वीरता, प्रेरणा, लपट आदि का प्रतीक है।

**(6) बैंगनी**– यह राजसी, सम्मान, रहस्य, वैभव, प्रभावशीलता एवं श्रेष्ठता आदि का प्रतीक है। शीतल वर्ण है।

**(7) श्वेत**– यह सक्रिय, प्रकाशयुक्त, हल्का,कोमल है एवं शान्ति, एकता, स्वच्छता, उज्ज्वलता, सत्य का प्रतीक है।

**(8) श्याम**– प्रकाशहीन, उत्तेजनाहीन, दुख, मृत्यु, पाप, अवसाद, अंधेरा, भय बुराई।

**वर्ण नियोजन–**

**1. वर्ण शून्यता**– इसमे केवल श्वेत एवं श्याम वर्ण का ही प्रयोग किया जाता है। (सफेद एवं काला)

**2. एक वर्णीय**– इसमें किसी एक रंगत मे सफेद तथा काला के मिश्रण से प्राप्त तानों का प्रयोग किया जाता है।

**3 बहुवर्णीय**– यह रंग नियोजन कलाकार की परिपक्वता व अनुभव पर निर्भर करता है। इसमें अधिक रंगतों का प्रयोग किया जाता है।

**4 पूरक रंग**– वर्ण चक्र मे जो रंग एक दूसरे के आमने सामने पड़ते है उन्हे पूरक रंग कहते है जैसे लाल का पूरक हरा, नीले का पूरक नारंगी, पीले का पूरक बैंगनी।

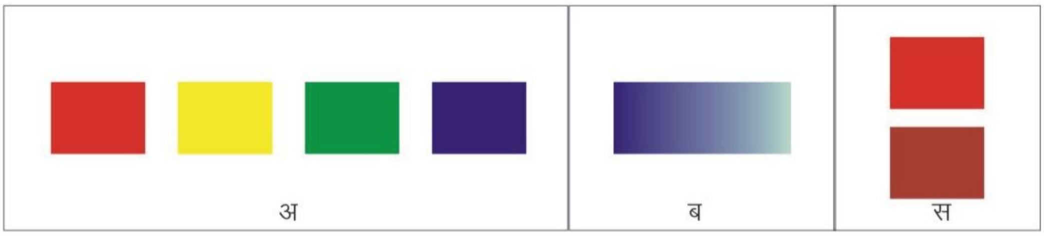


चित्र सं. 24

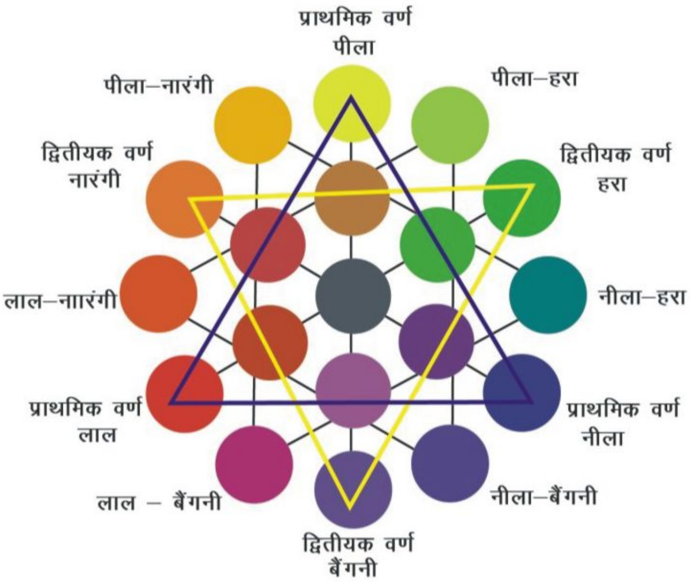


चित्र सं. 25

चित्र सं. 26

**4.तान**

**परिभाषा**– रंग के हल्के व गहरे बलों में प्रकाश की मात्रा को तान कहते हैं। इस प्रकार तान और बल या मान एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं। प्रकाश से वस्तुओं के आकार और रूप प्रभावित होते हैं। वस्तुएँ सपाट भी दिख सकती हैं। (चित्र सं. 27)

तान को तीन भागों में बाँटा गया है :–

1. छाया 2. मध्यम 3. प्रकाश

यह विभाजन किसी भी रंग मे सफेद व काले की मात्राओं के मिश्रण से उत्पन्न होता है। विभिन्न तान प्राप्त करने के लिये काले व सफेद वर्ण में से एक समय में केवल एक वर्ण का ही प्रयोग करना चाहिये। चित्र मे आकार स्पष्ट रूप रेखा नहीं रखते व चित्र–भूमि मे वह अन्तराल जो एकदम शून्य है उसको तान की सहायता से क्रमिक स्थापना द्वारा जीवन धारा प्रदान की जाती है। इस प्रकार आकारों के बीच सन्तुलन व अन्तराल मे सक्रियता और माधुर्य उत्पन्न हो जाता है।

**तान का महत्व एवं प्रयोग**–

तान के भावनात्मक तथा बौद्धिक प्रभाव भी होते हैं। कम या अधिक प्रकाश हमारे मनोविकारों को जगाता है। प्रकाश से वस्तुओं का अभिज्ञान होता है। प्रकाश हमें उत्तेजित करता है, शाम का वातावरण हमारे मन को शान्ति प्रदान करता है। इसके द्वारा ही वस्तु का वास्तविक आकार व आयतन का आभास हो जाता है। वस्तु पर तान का प्रभाव आधी आँखे बन्द करके अनुभव कर सकते है, क्योंकि इससे अनावश्यक विवरण छिप जाते है और तान का उचित अध्ययन हो पाता है। द्विआयामी तल पर त्रिआयामी प्रभाव व वातावरणीय क्षय–वृद्धि को हल करने में तान सहायक होती है।

**5. पोत**

प्रकृति में पाये जाने पदार्थ अथवा वस्तु का धरातल कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे चिकने, खुरदरे अथवा फिसलने वाले। इन्ही अनुभूतियों को उस सतह अथवा धरातल का गुण कहते है। अतः किसी भी वस्तु के धरातल का गुण ही पोत है। कला में यह कलाकृति की सतह का गुण है।

कला तत्वों मे पोत का विशेष स्थान है। अतः कलाकार का इसके प्रयोग मे विशेष कुशलता प्राप्त करना अनिवार्य है। हर पदार्थ के अपने गुण होते है। जैसे पत्थर कठोर है ठोस है अतः वह नर्म पनीर जैसा नहीं दिखाया जा सकता। चित्रकार द्विआयामी धरातल भित्ति, कपड़ा, ताडपत्र, कागज एवं अन्य धरातलों का चित्रण कर मानव एवं प्रकृति निर्मित धरातलों को चित्र भूमि पर उतारने का प्रयत्न करता है। हालाँकी उसका गुण चित्र में नही आ सकता परन्तु रंग भरकर चित्रकार दृष्टिभ्रम उत्पन्न करता है। (चित्र सं. 28)

**पोत का वर्गीकरण**– पोत को दो भागों मे विभाजित किया जाता है।

1. प्राप्त 2. सृजित

**प्राप्त**– वस्तु या पदार्थ की मूलभूत संरचना जिसे देखकर व छूकर अनुभव किया जा सकता है जैसे –

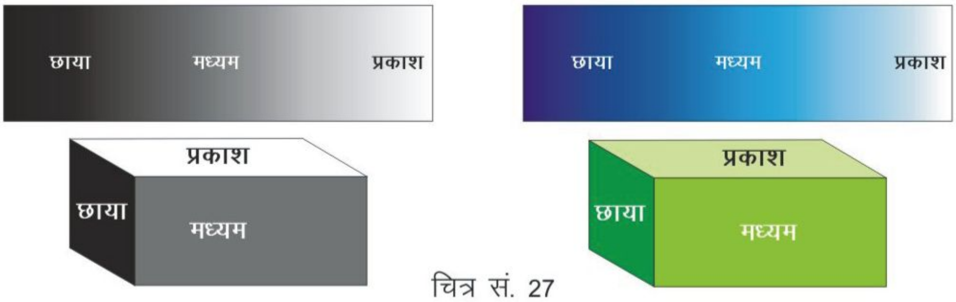


चित्र सं. 27

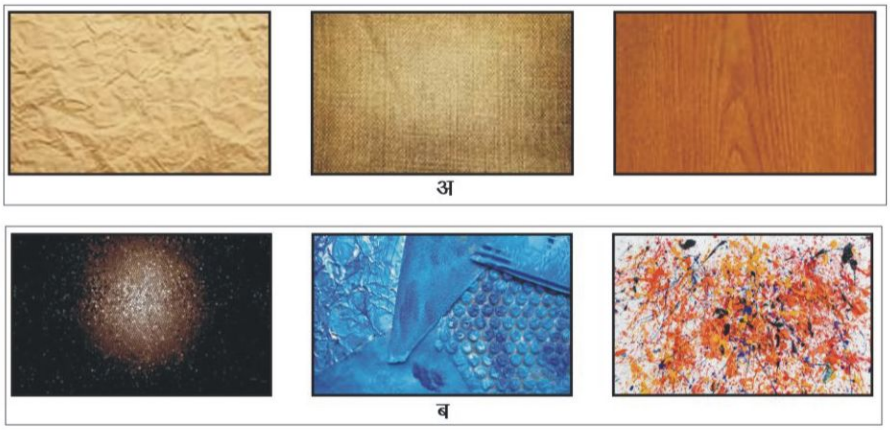


चित्र सं. 28

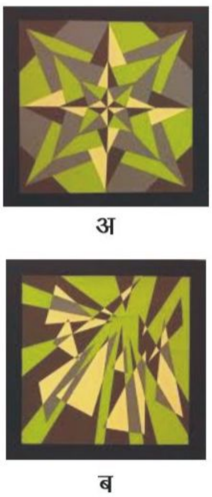

चित्र सं. 30

चित्र सं. 29

चित्र सं. 31

कागज, लकड़ी, केनवास, धातु आदि इसी वर्ग में आती है। चित्रकार के चित्र–तल की सामग्री होती है उस सतह का पोत प्राप्त पोत कहलाता है। जैसे कि कागज का दानेदार या चिकना होना, केनवास की बुनावट या दीवार का खुरदरा या चिकना होना। (चित्र सं. 28 अ)

**सृजित–** यह वह पोत होते हैं जो चित्र–तल पर सृजित किये जाते है। यह प्राकृतिक वस्तुओं के पोत को देख कर वैसे ही बनाये जाने वाले हो सकते हैं या फिर कलाकार अपनी आवश्यकतानुसार ब्रश, चाकू, रोलर, कपड़े आदि का प्रयोग कर या फिर मोटे–पतले रंगों का प्रयोग कर नवीन काल्पनिक पोत भी बना सकता है। अनुकृत पोत के द्वारा द्विआयामी तल पर त्रि–आयामी प्रभाव उत्पन्न किये जा सकते है। पानी और तेल रंग परस्पर मिलाने से व अन्य पोत संसाधनो के प्रयोग द्वारा कल्पनाजन्य नई सतह तथा धरातल का निर्माण करता है। आधुनिक कला में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। चित्र में अन्तराल की एकरसता को पोत की सहायता से भंग किया जा सकता है। उसमें रूचि उत्पन्न की जा सकती है। (चित्र सं. 28 ब)

**6.अन्तराल**

जिस धरातल या भूमि पर चित्र का निर्माण होता है वह द्वि–आयामी चित्र भूमि ही चित्र का अन्तराल है। कला में यह चित्र–भूमि एक तत्व है जिससे आकृतियों की बनावट तथा स्थिति का ज्ञान होता है, प्रमाण की सृष्टि होती है, रूपों का परस्पर संतुलन होता है और भावों का संचार होता है । (चित्र सं. 29)

कलाकार के लिये पहली समस्या खाली चित्र–भूमि पर अंकन करने की आती है। चित्रफलक के कितने भाग में वह आकृतियों को बनाये और कितना भाग रिक्त रखे। रिक्त चित्र–भूमि सभी सम्भावनाओं के लिए खुली है। एक बिन्दु या रेखा का अंकन करते ही, अन्तराल मे क्रिया, प्रतिक्रिया तथा संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है तथा चित्र–भूमि कुछ भागों या अनुपातों में विभक्त हो जाती है। किसी अच्छे चित्र के लिये यह आवश्यक है कि अन्तराल विभाजन इस प्रकार किया जाये कि उसका एक भाग दूसरे भाग को प्रभावित करे।

विभाजन की दृष्टि से हम इसे दो प्रकार में बाँट सकते हैंः–

**1. समविभक्ति 2. असमविभक्ति**

**1. समविभक्ति–** रेखाओं की सहायता से चित्र भूमि को इस प्रकार विभक्त करना कि दायँ–बायँ और ऊपर–नीचे के तल का भार बराबर हो एवं उनमें समान सन्तुलन बना रहे। इस प्रकार का विभाजन शान्त रस या करूण रस के लिये उपयुक्त रहता है। (चित्र सं. 29 अ)

**2. असमविभक्ति–** चित्र में गति एवं तनाव उत्पन्न करने के लिये इस प्रकार का विभाजन उपयुक्त रहता है। इस विभाजन में जैसा इधर वैसा उधर वाली परिस्थिति नही होती बल्कि कलाकार स्वतन्त्र होता है। इस विभाजन मे मौलिकता व सृजन का पक्ष प्रबल होता है। यह विभाजन वीरता शक्ति आवेश, प्रेम, प्रगति, सृजन क्रियाशीलता एवं उत्तेजना के भाव के भाव उत्पन्न करने मे सहायक होता है। (चित्र सं. 29 ब)

**अन्तराल एवं रूप व्यवस्था–** चित्रभूमि प्रायः ऊर्ध्व आयताकार, क्षैतिज आयताकार, वर्गाकार होती है। इसके अनुसार ही रूप की व्यवस्था करनी होती है। यह निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैंः–

**1. सम्मात्रिक–** इस पद्धति में मध्य–ऊर्ध्व रेखा के दोनों ओर समान संयोजन किया जाता है। (चित्र सं. 29 अ)

**2. पिरामिडीय**– इस पद्धति में मध्य–ऊर्ध्व रेखा के आधार पर चौड़ा और शीर्ष की ओर नुकीला संयोजन किया जाता है। (चित्र सं. 30)

**3. ऊर्ध्व**– मध्य ऊर्ध्व रेखा के दोनों ओर स्तम्भ के समान लम्बाई में आकृति रचना में इस पद्धति का प्रयोग होता है। (चित्र सं. 31)

**4. विकीर्णित**– केन्द्र से चारों ओर आभा विकीर्ण करते हुए।

**चित्रकला में इन सभी छः तत्वों का संयोजन के सिद्वान्तों के अनुरुप प्रयोग कर सफल चित्र की रचना सम्भव है।**

## महत्वपूर्ण बिन्दुः

1. किसी भी समतल धरातल पर रेखाओं तथा रंगों के द्वारा लम्बाई, चौड़ाई, गोलाई एवं ऊँचाई को अंकित कर किसी आकृति का सृजन करना चित्रकला है।
2. चित्रकला के तत्व हैंः 1. रेखा 2. रूप 3. वर्ण 4. तान 5. पोत 6. अन्तराल
3. अबाध गति से बिन्दुओं को अंकित करने से रेखा बनती है।
4. किसी भी वस्तु या पुंज की आकृति ही रूप है, जो अन्तराल के किसी भाग को चारों ओर से घेरती है।
5. वर्ण प्रकाश का गुण है इसका स्वतन्त्र अस्तित्व नही होता बल्कि अक्षपटल द्वारा मस्तिष्क पर पड़ने वाला एक प्रभाव है।
6. लाल, पीला एवं नीला प्राथमिक वर्ण हैं।
7. रंग के हल्के व गहरे बलों में प्रकाश की मात्रा को तान कहते हैं।
8. किसी भी वस्तु के धरातल का गुण ही पोत है।
9. जिस धरातल या भूमि पर चित्र का निर्माण होता है वह द्विआयामी चित्र भूमि ही चित्र का अन्तराल है।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. वर्ण के गुण होते हैं–

(अ) चार (ब) तीन

(स) दो (द) एक

2. तान किन दो रंगों के परिणाम का द्योतक है?

(अ) काला और सफेद (ब) भूरा और सफेद

(स) नीला और पीला (द) काला और भूरा

3. पोत कितने प्रकार के होते हैं?

(अ) दो (ब) तीन

(स) चार (द) एक

4. वर्णशून्यता में कौन से–कौन से वर्णों का प्रयोग होता है?

(अ) नीला और पीला (ब) काला और सफेद

(स) लाल, काला और सफेद (द) किसी भी वर्ण का प्रयोग नहीं होता

5. शक्ति और एकता का भाव किस आकार से होता है?

(अ) त्रिभुजाकार (ब) अण्डाकार

(स) आयताकार (द) वृत्ताकार

**अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न**

1. रेखाएँ कितने प्रकार की होती हैं?
2. रूप कितने प्रकार के होते हैं?
3. सृजित पोत कौन से होते हैं?
4. द्वितीयक वर्ण कौन से होते हैं?
5. मुख्य वर्ण कौनसे होते हैं?
6. रूप किसे कहते हैं?
7. वर्ण की सघनता को कौनसे रंग के द्वारा कम या ज्यादा किया जा सकता है?
8. शीतल वर्ण कौन–कौन से हैं?
9. प्राप्त पोत कौन–कौन से होते हैं?
10. चित्रकला में कितने प्रकार का रेखांकन होता है?

**लघूत्तरात्मक प्रश्न**

1. एक वर्ण से विभिन्न तान कैसे प्राप्त करते हैं?
2. पोत किसे कहते हैं?
3. अन्तराल विभाजन की कौन सी पद्धतियाँ हैं?
4. तान कितने प्रकार की होती है।
5. असम विभक्ति क्या है?
6. वर्ण के प्रमुख गुणों के बारे में बताइये।
7. गर्म रंगत किसे कहते हैं?
8. तान के महत्व के बारे में बताइये।
9. रूप के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति कैसे होती है?
10. विरोधी वर्ण किसे कहते हैं?

**निबन्धात्मक प्रश्न**

1. चित्रकला में तत्वों का महत्व बताते हुए सविस्तार लिखिये।
2. चित्र में कितने प्रकार की रंग योजनाएँ ळोती हैं? रंग योजना के महत्व को बताइये।
3. अन्तराल किसे कहते है? रूप और अन्तराल व्यवस्था के बारे में बताईये।
4. रेखाऐं कितने प्रकार की होती हैं? सविस्तार बताइये।

**बहुचयनात्मक प्रश्न उत्तरमाला**

1. ब 2. अ 3. अ 4. ब 5. स

# चित्रकला के माध्यम एवं तकनीक

प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक की कला यात्रा में कलाकारों ने समयानुसार विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करके अपने मनोभावों को कला के रूप में अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार गायक स्वर और कवि शब्दों के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। उसी प्रकार चित्रकार भी रंगों एवं रेखाओं के माध्यम से कलाकृति का निर्माण करता है। प्रागेतिहासिक काल में आदि मानव ने सरलता से उपलब्ध साधन यथा कोयला, खड़िया आदि के माध्यम का प्रयोग कर अपने इतिहास को गुफाओं में चित्रित कर अमर कर गया। समयानुसार विकास हुआ और मनुष्य ने ज्ञान प्राप्त कर चित्रण हेतु खनिज एवं पेड़–पौधों से प्राप्त विभिन्न रंगों का प्रयोग अपने चित्रों में और कुशलता से किया और आधुनिक काल तक आते–आते मनुष्य ने कृत्रिम रंगों का निर्माण कर अपनी कला को नई ऊँचाईयाँ प्रदान कर दी।

**माध्यम एवं तकनीक से तात्पर्य :**

दृश्य कलाओं में सृजन हेतु कलाकार जिन साधनों को प्रयोग करता है वह माध्यम कहलाती है एवं उस माध्यम के प्रयोग की विधि तकनीक कहलाती है। जैसे– केनवास पर तेल रंग, कागज पर जल रंग, चारकोल एवं पेस्टल आदि। हर माध्यम की कुछ विशेषताएँ होती हैं जो चित्र में विशिष्ट प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करती है। किसी भी माध्यम के प्रयोग से पहले कलाकार को उसके प्रयोग की तकनीक का ज्ञान होना आवश्यक है अन्यथा कलाकार अपने भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होगा।

## जल रंग

जल रंग पानी में घुलनशील माध्यम है। वैसे तो पोस्टर रंग भी जल में घुलनशील माध्यम है किन्तु तकनीकी रूप से हम पारदर्शी जल रंग चित्रण तकनीक हेतु जल रंग शब्द का प्रयोग करते है। इस हेतु शुष्क बट्टियों, ट्यूब कलर एवं बोतल में बंद रंग बाजार में उपलब्ध होते हैं। (चित्र सं. 1, 2, 3) जिन्हें पानी में घोल कर इनका प्रयोग किया जाता है। जल रंगों का कागज पर प्रयोग किया जाता है। इस हेतु हस्त निर्मित कागज का प्रयोग किया जाता है। यह बाजार में मुख्यतया तीन प्रकार का मिलता है। 1. चिकना 2. मध्यम 3. मोटा

**तूलिका (ब्रश):** जल रंग हेतु सेबल के बाल निर्मित तूलिका का प्रयोग किया जाता है। आजकल जानवर के बालों का प्रयोग तूलिका हेतु प्रतिबन्धित है इस कारणवश सिन्थेटिक ब्रशों का प्रयोग किया जाता है। यह गोल तथा चपटे आकारों में विभिन्न मोटाई में मिलते हैं। बारीक एवं छोटे हिस्से में काम करने कि लिये गोल आकार की तूलिका का प्रयोग होता है एवं बड़े स्थान को रंगने के लिये चपटे आकार के तूलिका का प्रयोग किया जाता है। (चित्र सं. 4)

**तकनीक :** सर्वप्रथम कागज को लकड़ी के बोर्ड पर ताना जाता है। इस हेतु कागज को पूर्ण रूप से गीला करके उसे बोर्ड के ऊपर इस तरह रखा जाता है कि कागज एवं बोर्ड के मध्य हवा नहीं रह पाये। फिर कागज को चारों ओर से कागज की टेप से चिपका दिया जाता है। इस हेतु कुछ कलाकार विशिष्ट रूप से बने हुऐ फ्रेम का भी उपयोग करते हैं।

कागज के सूखने के पश्चात् उस पर हल्की रेखाओं से रेखांकन किया जाता है। पारदर्शी जल रंगों के प्रयोग हेतु जिस स्थान को रंग करना होता है उस स्थान पर पहले ब्रश के द्वारा पानी लगाया जाता है फिर रंग को पानी में घोलकर कागज पर लगाया जाता है। इस तकनीक में जल का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। कागज पर एवं तूलिका में कितना पानी और कितना रंग हो यही कलाकार की दक्षता को दर्शाता है। पारदर्शी जल रंग चित्रण तकनीक में सफेद रंग के स्थान पर कागज के श्वेत वर्ण का ही प्रयोग करते हैं इसलिए जिस हिस्से में शुद्ध श्वेत वर्ण को दर्शाना होता है उस हिस्से में किसी भी वर्ण का प्रयोग नहीं किया जाता। इस हेतु सावधानी पूर्वक वह हिस्सा छोड़ देना होता है। जल रंग पद्धति में सर्वप्रथम हल्की तानों का तत्पश्चात् गहरी तानों का प्रयोग किया जाता है। इस हेतु रंगों को हल्के से गहरे क्रमशः पतले रूप में लगाया जाता है। एक बार गहरे रंग का प्रयोग हो जाने पर उसे हल्का नहीं किया जा सकता अतः इस हेतु पूर्व में ही निरीक्षण कर यह तय कर लिया जाता है कि कहाँ हल्के रंगों का प्रयोग करना है और कहाँ गहरे रंगों का। (चित्र सं. 11, 12, 13)

## तेल रंग

तेल रंग प्राचीन एवं स्थाई माध्यमों से एक है। इसका प्रचलन प्रारम्भ में यूरोपीय कला में ज्यादा हुआ है। भारत में इसका उपयोग अंग्रेजी शिक्षा पद्धत्ति के दोरान पाया गया। लियोनार्डो दा विंची, माइकल ऐंजिलो, रेफल आदि जैसे महान यूरोपीय कलाकारों ने इसी माध्यम का उपयोग कर कला जगत

में अपनी पहचान बनाई। राजा रवि वर्मा एवं अमृताशेर गिल के चित्रों से इस माध्यम को भारत में पहचान मिली। सूखने में अधिक समय लेने के कारण तेल रंगों में आवश्यकतानुसार पुनः सुधार करना आसान होता है। इसी कारण यथार्थवादी चित्रण शैली में इस माध्यम का उपयोग बहुत अच्छे से होता है। प्रारम्भ में तेल रंग हेतु लकड़ी, दीवार, एवं जेसो धरातल आदि का प्रयोग किया जाता था लेकिन वर्तमान में तेल रंग कागज व केनवास का प्रयोग किया जाता है।

केनवासः केनवास मूलतः लिलेन या सूत का बना उपयोग में लिया जाता है। केनवास पर कार्य करने से पहले उसे सबसे पहले लकड़ी की चौखट (फ्रेम) पर अच्छे से खींच कर तान कर कीलों या स्टेपल पिन्स के माध्यम से लगाया जाता है। केनवास को तानने के पश्चात् इस पर सरेस या फेविकोल लगाते हैं जिसे साइजिंग कहते हैं। इसके सूखने के बाद सफेदा वारनिश या तारपीन एवं अलसी के तेल में मिलाकर लगाते है। आजकल इस हेतु बाजार में उपलब्ध प्राइमर का भी उपयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया को प्राइमिंग कहते हैं। इसके सूखने के बाद केनवास चित्रण हेतु तैयार हो जाता है।

**तूलिका, कलर पेलेट एवं माध्यम :** तेल रंग के मिश्रण हेतु अंग्रेजी के अक्ष 'डी' के आकार की कलर पेलेट का प्रयोग किया जाता है जो लकड़ी की बनी होती है। (चित्र सं. 5) चित्रण हेतु ज्यादातर चपटे ब्रश का प्रयोग किया जाता है जो कि सूअर के बालों से बने होते हैं किन्तु आजकल कृत्रिम बालों (सिन्थेटिक हेयर) से बने ब्रश का उपयोग किया जाता है। (चित्र सं. 6) बारीक एवं सौम्य प्रभाव दिखाने हेतु मुलायम बालों वाले ब्रश का भी उपयोग किया जाता है। जैसा के तेल रंग नाम से ज्ञात होता है कि इसके प्रयोग में माध्यम हेतु तेल का प्रयोग होता है। इस हेतु अलसी का तेल व तारपीन का तेल जरूरत अनुसार होता है। चित्र को यदि जल्दी सुखाना है तो कभी–कभी थोड़ी मात्रा में वारनीश का भी प्रयोग किया जाता है।

**तेल रंग चित्रण विधिः** तेल रंग चित्रण विधि में सर्वप्रथम चारकोल से रेखांकन कर लिया जाता है। जिसे ब्रन्ट साइना या ग्रे रंग के द्वारा स्थाई कर लिया जाता है। तत्पश्चात् गहरी तानों का प्रयोग किया जाता है फिर मध्यम तान का एवं अन्त में हल्की तानों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया में कई दिन भी लग सकते हैं। पहले रंगों का प्रयोग पतले रूप में किया जाता है बाद में दूसरी या तीसरी परत के रूप में रंगों की मोटी परत का प्रयोग किया जाता है। दूसरी विधि में तेल रंग चित्र को गील–गीले में एक बार में पूर्ण कर लिया जाता है यह तकनीक अला– प्राइमा कहलाती है। (चित्र सं. 14, 15, 16)

तेल रंगों के प्रयोग में ब्रश के अतिरिक्त पेंटिंग नाइफ का भी प्रयोग किया जाता है जिसके माध्यम से रंगों को मक्खन की भांती मोटी परतों के रूप में लगाया जाता है। (चित्र सं. 7) तेल रंगों के द्वारा चित्र में विभिन्न प्रकार के पोत का भी सृजन हो पाता है।

## एक्रेलिक रंग

आधुनिक चित्रकला में एक्रेलिक रंगों का प्रयोग अधिकतम चित्रकार कर रहे हैं। यह माध्यम सन् 1950 के बाद प्रचलन में आया। यह जल में घुलनशील माध्यम में और सूखने के पश्चात् जलरोधी हो जाते हैं। यह इसका विशेष गुण है। इसकी कमी रंगों का बहुत जल्दी सूखना है जिस कारण यर्थाथवादी चित्रों छाया प्रकाश देने में कठिनाई आती है परन्तु आधुनिक काल में समय की कमी होने के कारण इसका जल्दी सूखना एक गुण भी है जिससे चित्रकार को रंगों के सूखने का इंतजार नहीं करना पड़ता। एक्रेलिक रंग पारदर्शी माध्यम है किन्तु रंगों की मोटी परतों का प्रयोग एवं सफेद रंगों का प्रयोग करने पर इसकी पारदर्शिता नहीं रहती अतः इनका प्रयोग पारदर्शी जल रंग की भाँति भी हो सकता है और अपारदर्शी तेल रंग की भाँति भी हो सकता है। इस माध्यम के द्वारा कई तरह के पोत का निर्माण हो सकता है जो कि आधुनिक कला का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इन रंगों में टेक्सचर वाईट भी मिलता है जिससे मोटे पोत का निर्माण होता है। मुलायम बालों वाले चपटे और गोल ब्रश का प्रयोग रंगों को सतह पर लगाने हेतु होता है। इसके अलावा कई तरह के रोलर्स भी मिलते हैं जिससे पोत का निर्माण भी होता है। (चित्र सं. 21)

## पेस्टल रंग

पेस्टल रंग शुष्क माध्यम है। इसमें रंगों की वर्तिकाएँ होती हैं जिन्हें कागज पर रगड़ कर चित्र बनाया जाता है। इस माध्यम का प्रयोग 15 वीं शती से आरम्भ हुआ था। 20वीं शती के फ्रांस के चित्रकार देगा ने इस माध्यम का बहुत सफलता से प्रयोग किया था। यह दो तरह के पाये जाते हैं–

1 ड्राय पेस्टल 2 ऑयल पेस्टल

ऑयल पेस्टल ड्राय पेस्टल की तुलना ज्यादा स्थाई है। (चित्र सं. 9, 10) बच्चों के द्वारा इन दोनों माध्यमों का बहुत सफलता से प्रयोग किया जाता है। पेस्टल रंगों हेतु धरातल के रूप में मोटा खुरदुरा रंगीन कागज का प्रयोग किया जाता है ताकि रंगों की वर्तिकाओं को रगड़ने से वह फटे नहीं और खुरदरा होने से रंग बत्तियों से छूट कर कागज पर आ जाये। कागज पर रगड़ने के पश्चात् उंगलियों से या

कागज की बत्तियों से रंगों को कागज पर ही मिलाया जाता है और वांछित प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। पेस्टल रंग के उपयोग के समय वर्तिकाओं से झड़ कर रंगों का चूर्ण कागज पर बिखर जाता है जिसे समय–समय पर फूँक के माध्यम से हटा देना चाहिये। चित्र बन जाने के पश्चात् रंगों का स्थायीकरण आवश्यक है अन्यथा रंग हाथ लगने पर हट सकते है और चित्र खराब हो सकता है। इस हेतु बाजार में कई प्रकार के फिक्सर मिलते है। जिसका स्प्रे कर रंगों को स्थाई किया जाता है। पेस्टल माध्यम में बने चित्र को फ्रेम करवाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि चित्र और काँच के मध्य कुछ दूरी बनी रहे अन्यथा काँच से चिपक कर चित्र खराब हो सकता है। (चित्र सं. 19, 23)

## वॉश चित्रण तकनीक

मुख्यतया यह चीनी–जापानी चित्रण तकनीक है जिसका भारतीय कला के पुनरूत्थान कालीन चित्रकारों ने प्रयोग किया था जो आज बंगाल शैली के नाम से भी जानी जाती है। इस तकनीक में पारदर्शी जल रंग तकनीक का ही प्रयोग थोड़े भिन्न प्रकार से किया जाता है। इसमें धरातल हेतु अंग्रेजी व्हाट्समेन कागज का प्रयोग किया जाता है। कागज को फ्रेम पर कस कर रेखांकन कर आवश्यक स्थानों पर हल्की गहरी घातों का प्रयोग किया किया जाता है व सूखने के पश्चात् अतिरिक्त रंग को पानी व तूलिका के माध्यम से धोया जाता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है इससे रंग कागज के अन्दर बैठ जाते हैं एवं चित्र में एक सौम्य वातावरण का निर्माण होता है एवं अन्त में बारीक तूलिका का प्रयोग कर चित्र की खुलाई (बारीक रेखांकन) की जाती है। (चित्र सं. 17)

## टेम्परा चित्रण तकनीक

टेम्परा माध्यम का भारतीय कला में सबसे अधिक प्रयोग हुआ है चाहे वह अजन्ता में बने चित्र हों या राजस्थानी शैली, मुगल शैली, पहाड़ी शैली में बने चित्र हो। मध्यकालीन यूरोपीय कला में भी इस माध्यम का प्रयोग हुआ है। मूलतः यह अपारदर्शी जल रंग माध्यम है। इसकी मुख्य विशेषता इसका पायस है। इस हेतु अण्डे की जर्दी एवं सरेस आदि का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में गोंद, ग्लिसरीन तथा अलसी के तेल का भी प्रयोग किया जाता है। धरातल हेतु लकड़ी, जैसा बोर्ड, कागज एवं केनवास का भी प्रयोग किया जाता है। जिस पर पहले खड़िया मिट्टी या प्लास्टर ऑफ पेरिस का पानी में घोल बनाकर उसमें सरेस मिला कर लेप लगाया जाता है। इसके सूखने के बाद रेखांकन किया जाता है। रंगों हेतु प्राचीन

काल में खनिज रंगों का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान में बाजार में मिलने वाले पोस्टर रंग भी टेम्परा तकनीक में काम आते हैं। तूलिका हेतु मुलायम बालों वाली गोल तूलिका व चपटी तूलिका का प्रयोग किया जाता है। (चित्र सं. 18)

## भित्ति चित्रण तकनीक

भित्ति चित्र से अर्थ भित्ति (दीवार) पर बने चित्र से है। प्रागैतिहासिक काल से भित्ति का प्रयोग चित्रण हेतु होता आया है। अजन्ता, बाघ और जोगिमारा में बने चित्र इसी तकनीक का परिणाम है। यूरोपीय कला में भी भित्ती चित्रण तकनीक का प्राचीन काल से प्रयोग हुआ है। भित्ती चित्रण विधि में दो तरह की तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

### 1 फ्रेस्को ब्यूनो या आला गिला पद्धति :

इस पद्धति में सर्वप्रथम चित्रण हेतु दीवार का निर्माण किया जाता है। इसके बाद दीवार पर चूना एवं बालू मिलाकर लगाया जाता है। दीवार के जितने भाग पर चित्रांकन करना होता है उतने भाग पर चूना प्लास्टर एवं शंख चूर्ण मिश्रण के घोल की परत लगाई जाती है। फिर गीले–गीले प्लास्टर में ही रेखांकन किया जाता है। रेखांकन के पश्चात् गीले प्लास्टर वाली दीवार पर ही आकारों में रंगांकन कर दिया जाता है जिससे रंग दीवार के प्लास्टर में अच्छी तरह से बैठ जाते हैं, स्थाई हो जाते हैं। इससे मौसम एवं समय का प्रभाव चित्रों पर नहीं पड़ता। इस पद्धति में जितना प्लास्टर का गीला होना आवश्यक है अतः उतने ही हिस्से पर प्लास्टर किया जाता है जितने पर एक समय में प्लास्टर के गिले रहते चित्रण एवं रंगांकन संभव है। यह भित्ति चित्रण की इतालवी पद्धति कहलाती है। इस हेतु खनिज रंगों का प्रयोग किया जाता है।

### 2 फ्रेस्को सिक्को या सूखी पद्धतिः

भित्ति चित्रण की इस पद्धति में धरातल हेतु दीवार बनाकर उस पर बालू एवं चूने का प्लास्टर किया जाता है। जब वह पूरी तरह सूख जाता है तब उस पर रेखांकर करके रंग भरे जाते हैं। रंगों में गोंद, सरेस, अण्डे की जर्दी आदि मिलाकर प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति आला गिला पद्धति से कम स्थाई है। इसमें रंगों की चमक भी एक समान नहीं रहती और समय के साथ इनका प्रभाव भी धुंधला पड़ता जाता है। (चित्र सं. 21)

चित्र सं. 1

चित्र सं. 2

चित्र सं. 3

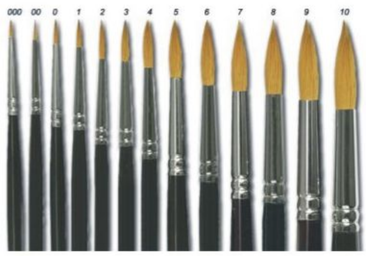


चित्र सं. 4

चित्र सं. 5

चित्र सं. 6

चित्र सं. 7

चित्र सं. 8

चित्र सं. 9

चित्र सं. 10

चित्र सं. 11

चित्र सं. 11

चित्र सं. 12

चित्र सं. 13

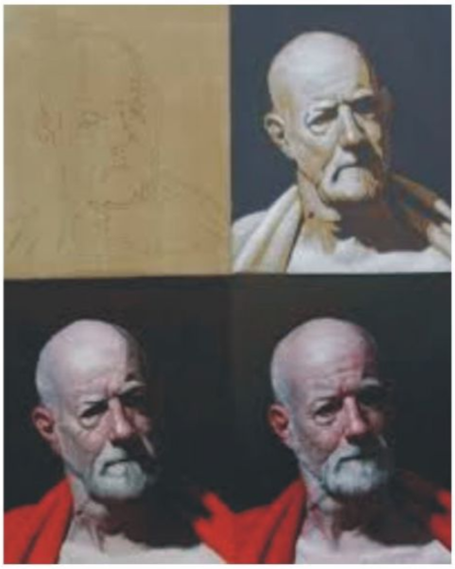

चित्र सं. 14

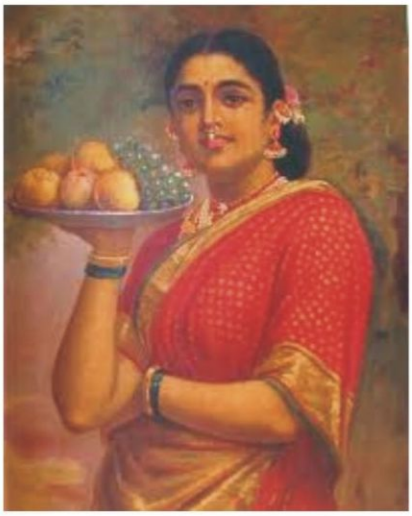

चित्र सं. 16

चित्र सं. 15

चित्र सं. 17

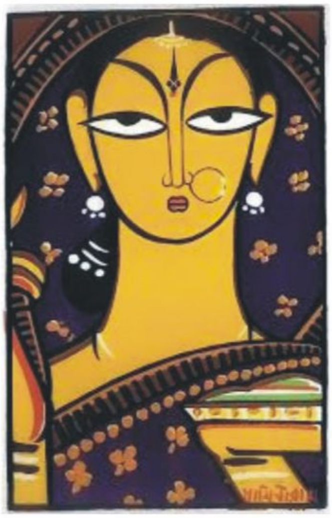

चित्र सं. 18

चित्र सं. 19

चित्र सं. 21

चित्र सं. 22

चित्र सं. 23

## अक्षरांकन या सुलेख या कैलीग्राफी

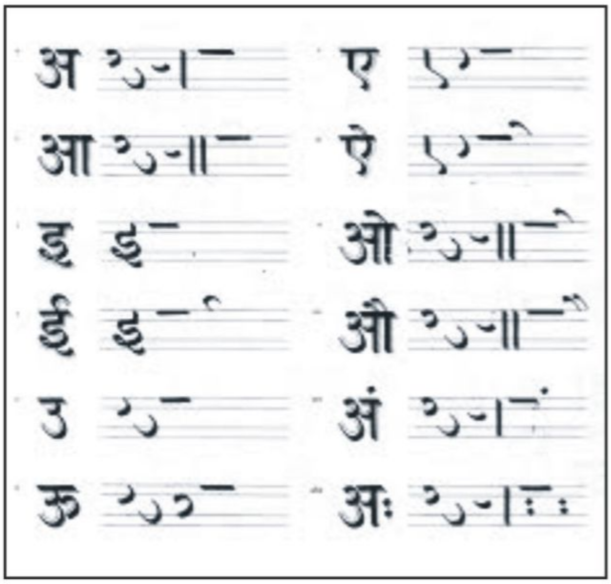


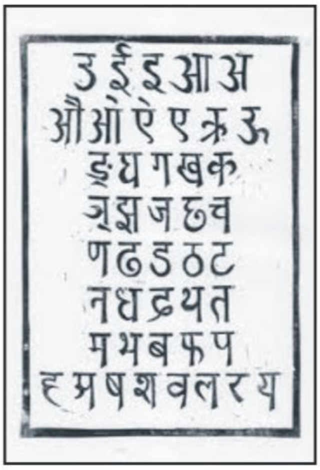

## अक्षरांकन या सुलेख या कैलीग्राफी

अक्षरांकन या सुलेख या कैलीग्राफी अक्षर कला है। भारत में इसके प्रमाण अशोक काल से ही पाये जाते है। सम्राट अशोक के शिलालेखों में कैलीग्राफी या अक्षरांकन शैली का प्रयोग किया गया है। प्राचीन काल में ताड़ के पत्ते पर धुंएँ से कालिख कर लेखन होता था। भारत में बाल्य काल से ही सुलेख लिखाने की परंपरा रही हैं। पाटी पर सुलेख भारतीय शिक्षण पद्धत्ति का हिस्सा रही हैं। इस हेतु सरकंडे से बनी कलम और स्याही का प्रयोग किया जाता था। आजकल बाजार में मिलने वाले क्रोकल पेन, होल्डर का उपयोग कैलीग्राफी के लिये किया जाने लगा है। विभिन्न आकार के ब्रश का उपयोग भी कैलीग्राफी के लिये किया जाता रहा है। कम्प्यूटर के माध्यम से भी कैलीग्राफी की जाने लगी है। कैलीग्राफी हेतु काली स्याही के प्रयोग का प्रचलन है।

## महत्वपूर्ण बिन्दुः

1. दृश्य कलाओं में सृजन हेतु कलाकार जिन साधनों को प्रयोग करता है वह माध्यम कहलाती है एवं उस माध्यम के प्रयोग की विधि तकनीक कहलाती है। जैसे– केनवास पर तैल रंग, कागज पर जल रंग, चारकोल एवं पेस्टल आदि।
2. जल रंग पानी में घुलनशील माध्यम है। यह पारदर्शी माध्यम है। वाश तकनीक में जल रंगों का प्रयोग किया जाता है।
3. टेम्परा अपारदर्शी जल रंग माध्यम है।
4. तेल रंग अपारदर्शी माध्यम है। यह देर से सूखने वाला माध्यम है।
5. ऐक्रेलिक रंगों का पारदर्शी एवं अपारदर्शी दोनों प्रकार से उपयोग किया जा सकता है।
6. भित्ति चित्रण विधि दो प्रकार की हैः– 1 फ्रेस्को ब्यूनो या आला गिला पद्धति 2. फ्रेस्को सिक्को या सूखी पद्धति

## अभ्यासार्थ प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. टेम्परा माध्यम में कौन सा प्रभाव आता है?

(अ) पारदर्शी (ब) अपारदर्शी

(स) चमकीला (द) धूसर

2. आला गीला पद्धति में कौन से रंगों का प्रयोग किया जाता है?

(अ) तेल रंग (ब) जलरंग

(स) पेस्टल रंग (द) खनिज रंग

3. जलरंग चित्रण में कौन सा प्रभाव उत्पन्न होता है?

(अ) पारदर्शी (ब) साधारण

(स) अपारदर्शी (द) इनमें से कोई नहीं

4. पेस्टल रंग माध्यम है–

(अ) शुष्क (ब) जलरंग

(स) खनिज (द) इनमें से कोई नहीं

5. वाश तकनीक में कौन से रंगों को प्रयोग होता है?

(अ) तेल रंग (ब) पोस्टर रंग

(स) पेस्टल रंग (द) जल रंग

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. जल रंगों में किसके बालों की तूलिका का प्रयोग किया जाता है?
2. टेम्परा रंग किस रूप में बाजार में मिलते हैं?
3. ऐक्रेलिक रंग का विशेष गुण क्या है?
4. पेस्टल रंग को स्थाई करने के लिये किसका प्रयोग किया जाता है?
5. तेल चित्रण तकनीक में कौनसी तूलिका का प्रयोग होता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आला गिला पद्धति से आप क्या समझते हैं?
2. टेम्परा तकनीक से आप क्या समझते हैं?
3. ऐक्रेलिक रंग तकनीक के बारे में समझाईये।
4. जल रंग तकनीक के बारे में संक्षेप में लिखें।
5. माध्यम से आप क्या समझते हैं?
6. कैलीग्राफी किसे कहते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भित्ति चित्रण क्या है? इसके बारे में विस्तार से लिखें।
2. वाश तकनीक के बारे में लिखें।
3. तेल रंग चित्रण तकनीक पर विस्तार से लिखें।
4. पेस्टल रंग पर विवेचना कीजिये।
5. चित्र में माध्यम व तकनीक पर एक निबन्ध लिखें।

**उत्तरमाला बहुचयनात्मक प्रश्न**

1. ब 2. द 3. अ 4. अ 5. द

# राजस्थान की लोक कलाएँ
## (मांडणे, रंगोली, अल्पना, गणगौर, मेंहदी)

सृजनशीलता मानव की सहज प्रवृत्ति है। बच्चे में इसे सहजता से देखा जा सकता है। कला के तत्वों एवं सिद्धान्तों से अनजान बच्चे को जैसे ही कोई माध्यम मिलता है वह अपने भावों को अभिव्यक्त करने लगता है। यही अभिव्यक्ति वातावरण मिलने पर आगे चल कर सुघड़ रूप ले लेती है। अपनी इसी कलात्मक अभिरूचि से प्रेरित होकर मनुष्य ने मांडणे, चित्रण या अंकन की कला को विकसित किया है।

मनुष्य ने प्राचीन काल से ही किसी भी धरातल पर इकरंगी या विभिन्न रंगों से चित्रों या आकृतियों को बनाना सीख लिया था। जिसके चिन्ह हमें प्राचीन सभ्यताओं के उत्खनन से प्राप्त होते हैं। प्रागैतिहासिक काल की गुफाओं से लेकर मोहनजोदाड़ों व हड़प्पा संस्कृति की खुदाई से प्राप्त बर्तनों मुद्राओं आदि पर भी किसी न किसी रूप में इस अंकन कला के चिन्ह हम पाते रहें है। भारतवर्ष में मांडणों की प्रथा प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रही है। मांडणों से तात्पर्य सभी प्रकार के मांडणे (अलंकृत परिकल्पनाओं) जैसे आँगन, दीवार एवं हाथों तथा पैरों (मेंहदी द्वारा) इत्यादि के मांडणों से है। यह धार्मिक, सांस्कृतिक आस्थाओं का प्रतीक भी रही है। इन्हें आध्यात्मिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। वैदिक काल में हवनों एवं यज्ञों में 'वेदी' का निर्माण करते समय भी मांडणे आदि बनाये जाते थे। ग्रामीण अंचलों में घर–आँगन साफ कर लीपने के बाद रंगोली, अल्पना, मांडणों आदि का रिवाज आज भी विद्यमान है।

त्यौहारों, व्रत, अनुष्ठान, पूजा, उत्सव, विवाह तथा पुत्र जन्म आदि के अवसर पर मांडणे, रंगोली, अल्पना आदि बनाने की परम्परा हमारे देश में सर्वत्र प्रचलित है। कला के विकास में धार्मिक तथा जातिगत परम्पराओं का बहुत योग होता है। इसीलिए भारत जैसे विशाल देश में विभिन्न प्रान्तों के अपने अलग–अलग रहन–सहन, रीतिरिवाज तथा मान्यताएँ हैं उन्हीं के अनुरूप अलग–अलग जगहों पर शादी–विवाह, उत्सव–त्यौहार तथा मांगलिक कार्यों पर घर आंगन को लीप–पोत कर सुन्दर–सुन्दर रंगों से सजाया जाता है व दीवारों तथा घर–द्वारों की सज्जा की जाती है।

अंकन की यह कला भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा लोक कला है। लोक कला यानि

जन–जन द्वारा जन–जन हेतु निसृत कला। भारत में लोक का यह रूप अलग–अलग प्रदेशों में यह अलग–अलग नामों से प्रचलित है। इनकी शैली में भिन्नता हो सकती है लेकिन इसके पीछे निहित भावना और संस्कृति में पर्याप्त समानता है। उत्तर प्रदेश में इसे चौक पूरना, राजस्थान में मांडणा, बिहार में अरिपन, बंगाल में अल्पना, महाराष्ट्र में रंगोली, कर्नाटक में रंगवल्ली, तमिलनाडू में कोल्लम, उत्तरांचल में ऐपण, आंध्र प्रदेश में मुग्गु, हिमाचल प्रदेश में अदुपना, कुमाऊँ में लिखथाप या थापा तो केरल में कोलम कहा जाता है।

## रंगोली–अल्पना–मांडणे

भारत में प्राचीन काल से ही मांडणों, रंगोली या चौक पूरने की परम्परा रही है। इसमें लोक कला एक अविरल धारा के रूप में माँ से बेटी को, सास से बहु को परंपरा से मिलती रही है। छोटी लडकियाँ पड़ौस व घर की देखादेखी अल्पनाएँ, रंगोली, मांडणे आदि बनाना सीखती हैं और शादी के बाद दूसरी जगह जाने पर इनके माध्यम से दूसरे प्रदेश में कला प्रसारित करती है। इसी से एक राज्य के आलेखन (डिजाइन) दूसरे राज्य में भी मिल जाते हैं। आलेखनों की दृष्टि से बंगाल, राजस्थान व गुजरात विशेष समृद्ध हैं।

अल्पना जीवन दर्शन का प्रतीक है जिसमें यह जानते हुए भी कि यह कल धुल जायेगी, नश्वरता को जानते हुए भी पूरे जोश के साथ की जाती है। कहा जाता है कि रंगोली का जन्म एक बिन्दू से हुआ है। यह बिन्दू आत्मा व परमात्मा का मिलन बिन्दु है। यह आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है। आलेखन सामान्यतः केन्द्र बिन्दू के अंकन के बाद चतुरभुज के चार बिन्दुओं से प्रारम्भ की जाती है। इन्हें अन्दर से बनाना शुरू करके बाहर फैलाते जाते हैं। यह चार बिन्दू चार वेद चार दिशाएँ चार आश्रम आदि की प्रतीक हैं। कुछ मांडणे ऐसे बनाये जाते हैं जिन पर पाँव न रखना पड़े। इसी तरह घर की देहरी प्रवेश द्वारा चौक व पूजा स्थल के मांडणों में भी कुछ बातों का ध्यान रखा जाता है।

सबसे अधिक मांडणे, रंगोली आदि दीपावली पर्व पर बनाये जाते हैं। उस समय घर की सफाई पुताई होती है। फर्श की सफाई धुलाई होती है। कच्चे फर्श को गोबर मिट्‌टी से लीपा जाता है तथा लक्ष्मी के स्वागत की तैयारी होती है। अतः इस अवसर पर फर्श व दीवारों को खुबसूरत मांडणों, रंगोली आदि से सजाने की परंपरा चली आ रही है। राजस्थान में हीण, हटड़ी, दीवट दीपावली के मौके पर ही मांडणे बनाये जाते हैं। बड़ा पगल्या गृह प्रवेश स्थान पर, छोटा पगल्या प्रवेश स्थान व लक्ष्मी पूजन स्थान पर बनाया जाता है। बड़े पगल्ये के पास गाय के खुर बनाने का प्रचलन है। (चित्र सं. 1,2, 3, 4)

दीपावली के अलावा दशहरा, रक्षाबंधन, भाई दूज, होली, संक्रांति, तीज, गणगौर आदि पर मांडणा और रंगोली, अल्पना आदि बनाई जाती है। नव–वधु के स्वागत में रंगोली बनाने की परंपरा है और उससे कहा जाता है कि अलंकृत भूमि पर ही पाँव धरे। किसी भी उत्सव व विशिष्ट आगंतुक के स्वागत समारोह में भी प्रवेश द्वार को मांडनों से सजाते हैं। यदि इन्हें काफी समय तक सुरक्षित रखना हो तो इन्हें तेल रंगों से बनाते हैं।

## रंगोली–अल्पना–मांडणे बनाने की विधियाँ

रंगोली, अल्पना, मांडने बनाने की प्रक्रिया स्थान–स्थान पर भिन्न–भिन्न है। कच्चे घरों में त्यौहारों पर स्त्रियाँ मिट्टी व गोबर मिलाकर लीपती हैं। गोबर में लाल मिट्टी भी मिलाते हैं जिससे फर्श या दीवारों का रंग लाल व गेरूआ हो जाता है। कहीं–कहीं राख गोबर मिलाकर एक और रंग का संयोजन किया जाता है। पक्के फर्श पर बनाने के लिए कई तरीके काम में लाये जाते हैं।

तैयार फर्श या दीवार पर खड़ी–खड़िया से मांडणे बनाये जाते हैं। खड़ी–खड़िया को भिगो कर पतला घोल कपड़े से छान कर थोड़ा सा गोंद भी डालते हैं। सफेद रंग के लिए पांडु सफेद कली (चूना), आटा व पिसा चावल का उपयोग किया जाता है। चावलों को भिगो कर, फूल जाने पर सिल पर मैदा के समान बारीक पीस लेते हैं। थोड़ा पानी मिला कर गाढ़ा घोल बना देते हैं। इसमें कई तरह के रंग भी मिलाये जा सकते हैं। मिट्टी के फर्श पर मांडणा करना हो तो रंग नहीं मिलाते। रंगों के अलावा मूंग, उड़द, चावल, गेहूँ आदि से भी अल्पना का सजाते हैं।

बंगाल में चावलों को कूट पीस कर उसका लेप तैयार करके तथा रंग भरने के लिए उसमें रंग मिला कर कपड़े की एक बत्ती की सहायता से महिलाएँ अल्पना बनाती हैं। इनकी आकृतियों में मुख्य हैं, मछली, सूर्य, रीछ, चन्द्र, लक्ष्मी के चरण तथा पत्तियाँ और लताएँ। अच्छी फसल के लिए महिलाऐं आँगन में पेड़ की आकृति बना कर भी उसकी पूजा करती हैं।

महाराष्ट्र और गुजरात में रेखाओं के लिए बिल्लौर पाउडर तथा अन्दर के भराव के लिए रंगीन पाउडर को काम में लिया जाता है। फिर सूखने पर सीधी रेखाओं में बिंदियाँ जोड़ कर डिजाइन पूरा किया जाता है और फिर इसे रूपहला पाउडर छिड़क कर चमकदार बना दिया जाता है। गुजरात में इन रंगों के माध्यम से पौराणिक दृश्य, स्वस्तिक तथा कुछ ज्यामितीय नमूने व महापुरूषों की आकृतियाँ भी अंकित की जाती है।

## अल्पना

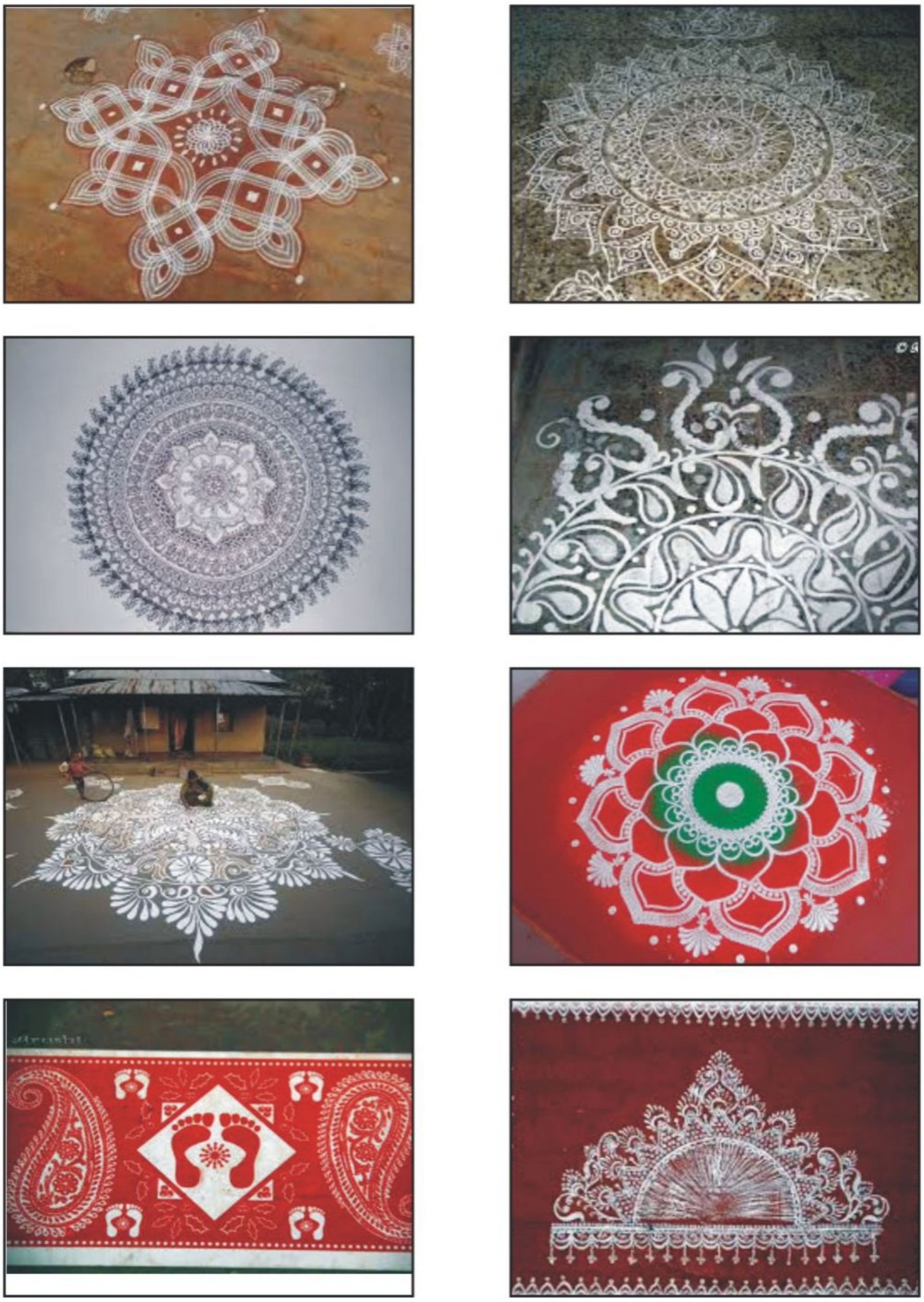

चित्र सं. 3

## रंगोली

चित्र सं. 4

## मांडणे :

राजस्थान में अधिकांश मांडणों के लिए सफेद खड़िया, हिरमच या गेरू का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम खड़िया को पानी में घोला जाता है। फिर कपड़े के छोटे टुकड़े को घोल में भिगो कर हाथ में रख कर छोटी उँगली के पास वाली उँगली से भूमि पर मांडणे बनाये जाते हैं। इसमें किसी भी प्रकार के यन्त्र का रेखाओं व वृत्त इत्यादि के खींचने के लिये प्रयोग नहीं किया जाता। मांडणों को हमेशा केन्द्र से शुरू करके बाहर की ओर बढ़ाया जाता है। इनकी अपनी बँधी हुई इकाइयाँ हैं। जिनके आधार पर उन्हें कम ज्यादा बढ़ाकर बनाया जाता है, जिनको ये लोग चीरण, जूआ, झँवरा, बेल, भरती और फुलड़ी कहते हैं। (चित्र सं. 1, 2) कहीं–कहीं अपनी इच्छा से महिलाएँ इनमें लाल, हरा, नीला, पीला या सिन्दूरी रंग भी भर देती हैं। भूमि अलंकरण की इस परंपरा में राजस्थानी मांडणों का अपना विशिष्ट स्थान है। यहाँ के लोग मांडणे प्रायः सफेद तथा भरने में लाल या पीले रंग से ही भरे जाते हैं। कहीं–कहीं यह मांडणे आटे, हल्दी व कुमकुम से भी बनाये जाते हैं, तो कहीं–कहीं विभिन्न रंगों से रंगी चौकर व खड़िया से बनाये जाते हैं। पहले इनकी खास–खास रेखाएँ खींच ली जाती हैं। फिर उसे त्रिभुज या गोलों में बाँट कर पूरा किया जाता है। यहाँ श्रावण मास के त्यौहारों पर पाँच फूल, सात फूल, चौपड़, फूलझड़ी तथा दीवार पर बनाया जाने वाला मांडणा होता है। मकर संक्रांति पर सूरज का रथ तथा फीण्यां मांडी जाती हैं। होली पर खांडा, चंग, ढोलक आदि तथा गणगौर आदि पर गुणा मांडा जाता है। शादी–ब्याह, दीपावली व नव आगंतुक के आने के उपलक्ष्य में चौक पूरना, रथ, बैलगाड़ी, गलीचे तथा पगल्या मुख्य रूप से मांडे जाते हैं। इसी तरह दशहरा देवप्रबोधिनी एकादशी पर भी आंगन में कुछ–कुछ प्रतीकात्मक स्वरूपों को अंकित करके उनकी पूजा की जाती है।

बहुत से त्यौहारों पर देवी–देवताओं के प्रतिकात्मक स्वरूपों को दीवार पर अंकित करके भी उनकी पूजा की जाती है। यह दीवारों के मांडणे अलंकरण की दृष्टि से भी बनाये जाते हैं तो पूजा अनुष्ठान के लिे भी। जैसे राजस्थान में श्रावण पूर्णिमा पर दरवाजे के दोनों ओर की दीवारों पर श्रवण कुमार की मातृ–पितृ भक्ति के कुछ प्रतीकात्मक चित्र बनाकर उनकी पूजा की जाती है। सांझी पूजन की भी एक परम्परा हमारे समाज में है। इसे किसी मंदिर या देवरे की दीवार पर गोबर से बनाया जाता है। उंगली या अंगुठों के बीच गोबर लेकर उसे दीवार पर चिपकाकर कई तरह की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। फिर उन्हें कुमकुम आदि से दीवार पर देवी–देवताओं के प्रतीकात्मक स्वरूपों तथा स्वास्तिक आदि के चित्र बनाये जाते हैं। जहाँ तक अलंकरण का प्रश्न है वहाँ तो हम विविध रूपों के पक्के रंगों यहाँ तक की सुनहरी व रूपहरी रेखाओं तक में प्राचीन इमारतों की

दीवारों तथा खिड़की दरवाजों पर बने भित्ति–चित्रों का देखते ही हैं।

### मांडणे के प्रतीक चिन्ह

रंगोली में ज्यामितिक आकारों का बहुत प्रयोग किया जाता है। बिन्दु, रेखा के साथ–साथ त्रिभुज, वृत्त व बहुभुज आदि का प्रयोग होता है। इन्हें बनाने में किसी यन्त्र सामग्री की सहायता न लेकर स्वतन्त्रता से अंदाज से बनाया जाता है। आकारों की अनगढ़ता व रेखाओं के मोटे पतले होने का भी अपना एक सौंदर्य होता है।

बिन्दुओं से बनने वाले मांडणों में तांत्रिक विचारों की झलक मिलती है। इन बिन्दुओं की निश्चित संख्या व आलेखनों में होने के कारण इनसे गिनती भी सिखाई जाती है। 3 गुना 3 बिन्दुओं से लेकर 108 गुना 108 बिन्दुओं तक की आलेखनें मिल जाती हैं। अधिक बिन्दुओं की डिजाइनें कठिन होने के कारण अधिक प्रचलित नहीं हो सकी हैं।

### दीपावली के मांडने और उनके अर्थ

दीपावली के दिन स्त्रियाँ घर का आँगन पक्का हो तो उसे धोकर या कच्चा हो तो उसे लीपकर उस पर खड़िया व गेरू से मांगलिक चौक पूरती हैं, लक्ष्मीजी के पगल्या (पाँव) बनाती हैं। फिर गेरू व खड़िया से ही दीवाल पर एक चौखटा बनाकर उसमें लक्ष्मी–गणेश के चित्र मांडती हैं। फिर चित्र बनाया जाता है– लक्ष्मी के आसन कमल का, दोनों ओर मेघों के प्रतीक स्वरूप दो सजीव हाथियों के चित्र अंकित किये जाते हैं। यहीं पर एक ओर प्रकृति की आदि शक्ति स्तोत्र दिन व राज के प्रकाश स्तम्भ सूर्य व चन्द्रमा के चित्र भी अंकित किये जाते हैं।

### होली के मांडने व अर्थ

होली के अवसर पर राजस्थान में बनाए जाने वाले मांडणे – चंग, पगल्या, दरी, चौक, थाली, बाजोट, बीजणी, गाडूला, चटाई हैं। चौक के चारों ओर डांडिये, गेंद, दड़ी, सातिया तथा चाँद–सूरज बनाए जाते हैं। ये चित्र बच्चों के खेल व होली के बाद आने वाली गर्मी के प्रतीक है। बीजणी होली थाली बाजोट सुख शान्ति व समृद्धि के प्रतीक हैं तथा पगल्या देवी–देवताओं व लक्ष्मी की उपस्थिति के प्रतीक हैं। प्रतिकात्मक रूप में कुछ पेड़–पत्तियाँ व पक्षियों आदि के चित्र भी अंकित किए जाते हैं।

## गणगौरः

गणगौर पूजन प्रतिपदा (धुलण्डी) चैत्र से कुंवारी कन्याऐं शुरू करती हैं। कन्याऐं छत या किसी

## मांडणे

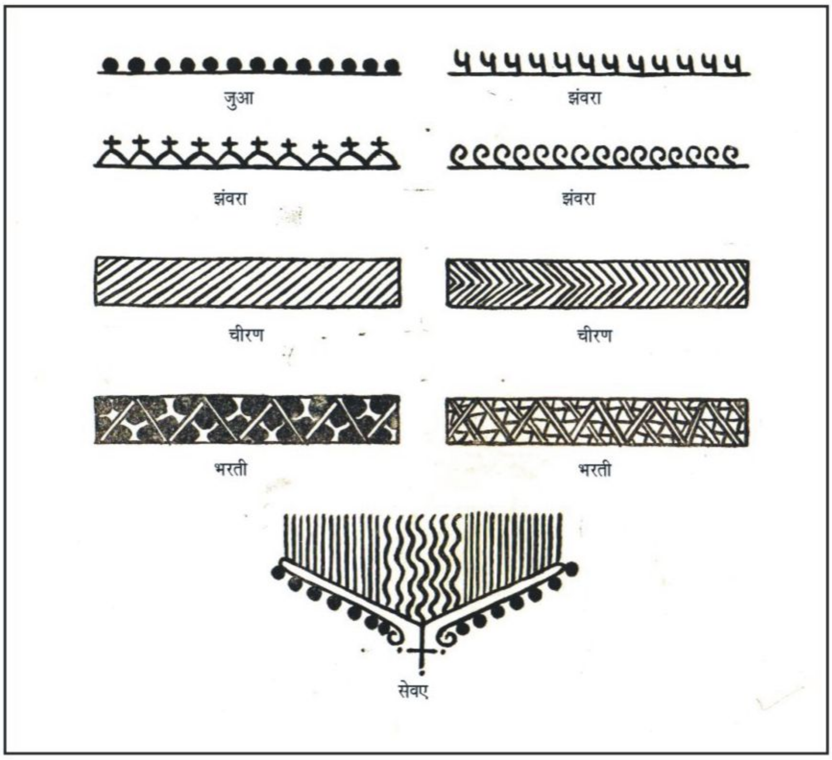

गणगौर

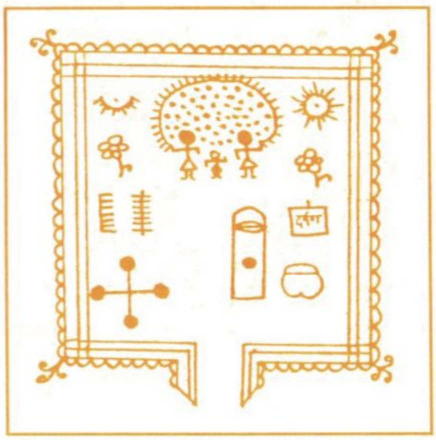

धींगा गणगौर

चित्र सं. 1

## मांडणे

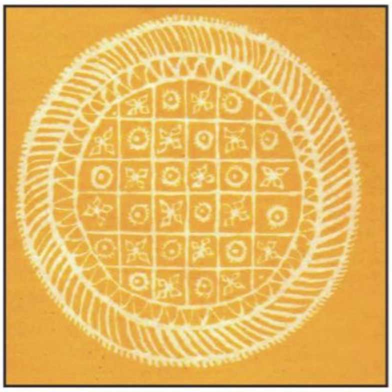

फूल

गलीचा

चौपड़

पगल्या

गाड़ी

चित्र सं. 21

एकांत स्थान पर गोबर से फर्श को लीप कर सफेद मिट्टी से चित्र बनाती हैं। सप्तमी तक रोज एक नई आलेखन कभी पान कभी फूल या पत्ती में गणगौर, ईसर व उनके बालक का स्वरूप बनाकर पूजती हैं। शीतलाष्टमी से आठ दिन तक यही स्वरूप दोपहर बाद किसी देव–स्थान की दीवार पर जाकर गुलाल के सात रंगों से बनाकर पूजती हैं जिसे स्थानीय बोली में दान्तणिया (गणगौर को पानी पिलाना) कहते है। चित्र सं. 1

**धींगा गणगौरः**

चैत्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी से धींगा गणगौर का विवाहित स्त्रियाँ पूजन करती है। किसी खुली आलमारी या पवित्र स्थान की दीवार को सफेद मिट्टी से पोतकर इस पर केसर कुमकुम से चित्र बनाया जाता है, जिसकी पन्द्रह दिन तक लगातार विधिवत गेंहू, पतासे, रोली, चावल, धूप, घी, पुष्प आदि से पूजा की जाती है। चित्र सं. 1

## मेंहदी

यह स्त्रियों के सोलह श्रृंगारों में से एक श्रृंगार है। राजस्थान में मेंहदी का प्रचलन ज्यादा है। मेंहदी एक बारहमासी पौधा है। इसकी पत्तियों का प्रयोग श्रृंगार के साधन के रूप में होता है। इसकी पत्तियों को छाया में सुखाकर, पीस कर, पानी मिला कर लेही तैयार की जाती है। इस लेही से हाथ, पैर नाखून और बालों को रंगा जाता है। लेही में किसी तूलीका या माचीस की तूली को डूबोकर या आधुनिक काल में कोन में भर कर स्त्रियाँ हाथ व पैरों तलुओं पर इसके द्वारा सुन्दर आलेखन बनाया करती हैं। लगाते समय यह हरे रंग की होती है लेकिन सूख जाने पर रच कर इसका रंग लाल हो जाता है।

विशेष रूप से स्त्रियाँ व कुमारियाँ मेंहदी लगाती हैं। हिन्दुओं में तीज, श्रावणी, दिवाली, होली, गणगौर आदि त्यौहारों पर और विवाहादि मांगलिक कार्यों पर मेंहदी लगाई जाती है। गणगौर के पर्व स्त्रियाँ हाथों में चूनड़ी और गुणा के मांडणें विशेष रूप से मांडा करती हैं। तीज के त्यौहारों पर मांडे जाने वाले प्रमुख मांडणे लहरिया और घेवर है। दिवाली के पर्व पर स्त्रियाँ मेंहदी के मांडणों में हाथ पर पान और गलीचा मांडा करती हैं। होली के पर्व पर स्त्रियाँ मेंहदी के माध्यम से अपनी हथेलियों पर चौपड़ एवं चार बीजड़ी एवं अन्य प्रकार के मांडणे मांडा करती हैं। इसके अलावा अन्य त्यौहारों, पर्वों तथा मांगलिक कार्यों पर स्त्रियाँ अपनी इच्छानुकूल फूल, पांच पचेटा, साट्या का झाड़, फुलड़ियाँ आदि जो उन्हें पसंद होते हैं, मांड लेती हैं। चित्र सं. 5

मेंहदी, स्त्रियों के श्रृंगार की वस्तु होने तथा उनकी कोमल हथेलियों की सुन्दरता को निखार देने के

## मेहन्दी

चित्र सं. 5

कारण उनकी प्रिय वस्तु बन गई है। अब धीरे–धीरे मेंहद के मांडणों में कई नये आलेखनों का समावेश होने लग गया है।

## महत्वपूर्ण बिन्दुः

1. लोक कला यानि जन–जन द्वारा जन–जन हेतु निसृत कला।
2. मांडणे को विभिन्न प्रदेशों में मांडणा कला अलग–अलग नामों से प्रचलित है। उत्तर प्रदेश में इसे चौक पूरना, राजस्थान में मांडणा, बिहार में अरिपन, बंगाल में अल्पना, महारा ट्र में रंगोली, कर्नाटक में रंगवल्ली, तमिलनाडू में कोल्लम, उत्तरांचल में ऐपण, आंध्र प्रदेश में मुग्गु, हिमाचल प्रदेश में अदुपना, कुमाऊँ में लिखथाप या थापा तो केरल में कोलम कहा जाता है।
3. गणगौर पूजन प्रतिपदा (धुलण्डी) चैत्र से कुंवारी कन्याऐं शुरू करती हैं।
4. तीज के त्यौहारों पर मांडे जाने वाले प्रमुख मांडणे लहरिया और घेवर है। दिवाली के पर्व पर स्त्रियाँ मेंहदी के मांडणों में हाथ पर पान और गलीचा मांडा करती हैं। होली के पर्व पर स्त्रियाँ मेंहदी के माध्यम से अपनी हथेलियों पर चौपड़ एवं चार बीजड़ी एवं अन्य प्रकार के मांडणे मांडा करती हैं।
5. होली के अवसर पर राजस्थान में बनाऐ जाने वाले मांडणे – चंग, पगल्या, दरी, चौक, थाली, बाजोट, बीजणी, गाडूला, चटाई हैं।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. मांडणा किस प्रदेश की लोक कला है?

(अ) तामिलनाडू (ब) बिहार

(स) महाराष्ट्र (द) राजस्थान

2. अल्पना किस प्रदेश की लोक कला है?

(अ) महाराष्ट्र (ब) बंगाल

(स) बिहार (द) तामिलनाडू

3. बिहार की लोक कला है–

(अ) अल्पना (ब) अरिपन

(स) मांडणा (द) रंगोली

4. आन्ध्र प्रदेश की लोक कला है–

(अ) मांडणा मांडणा (ब) मुग्गू

(स) कोलम (द) कोल्लम

5. तीज के त्यौहार पर कौन सी मेंहदी मांडी जाती है –

(अ) पांच पचेटा (ब) फुलड़िया

(स) लहरिया और घेवर (द) साट्या का झाडू

## अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. होली के अवसर पर बनाये जाने वाले मांडणों के नाम बताइये।
2. दिवाली के अवसर पर बनाये जाने वाले मांडणों के नाम बताइये।
3. मेंहदी किस से बनाई जाती है?
4. गणगौर किस अवसर पर बनाई जाती है?
5. मेंहदी विशेष रूप से कौन लगाती हैं?
6. गणगौर पूजन कौन करती हैं?

## लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मेंहदी लगाने की विधि बताईये।
2. रंगोली बनाने की विधि बताईये।
3. मांडणे बनाने की विधि बताईये।
4. होली के मांडणे के अर्थ बताइये।
5. अल्पना बनाने की विधि बताइये।

## निबन्धात्मक प्रश्न

1. मेंहदी कला बारे में विस्तार से लिखिये।
2. विभिन्न त्यौहारों पर बनाये जाने वाले मांडणों के बारे में विस्तार से लिखिये।

## उत्तरमाला बहुचयनात्मक प्रश्न

1. द 2. ब 3. ब 4. ब 5. स

## अभ्यासार्थ रेखांकन

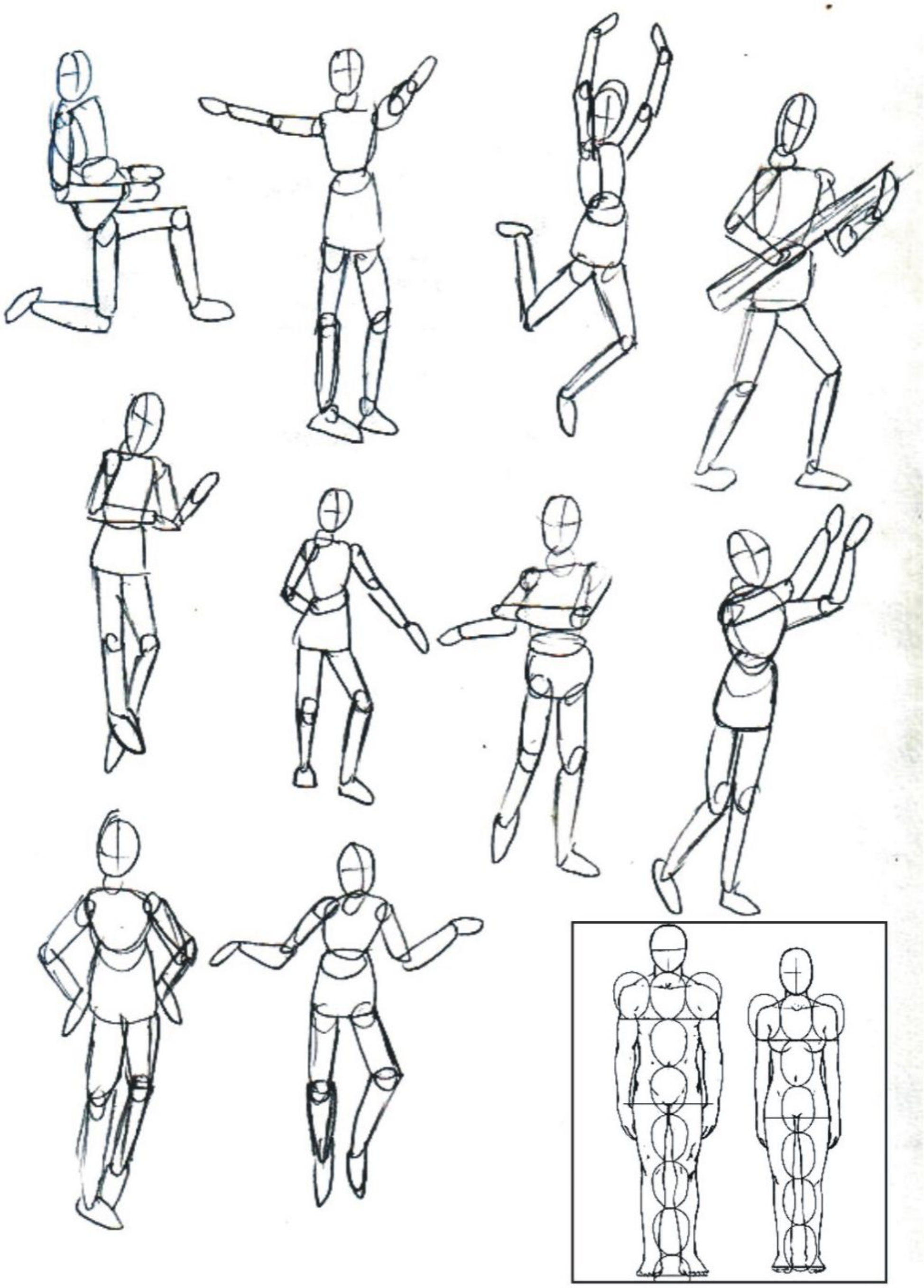

## अभ्यासार्थ रेखांकन

## अभ्यासार्थ रेखांकन

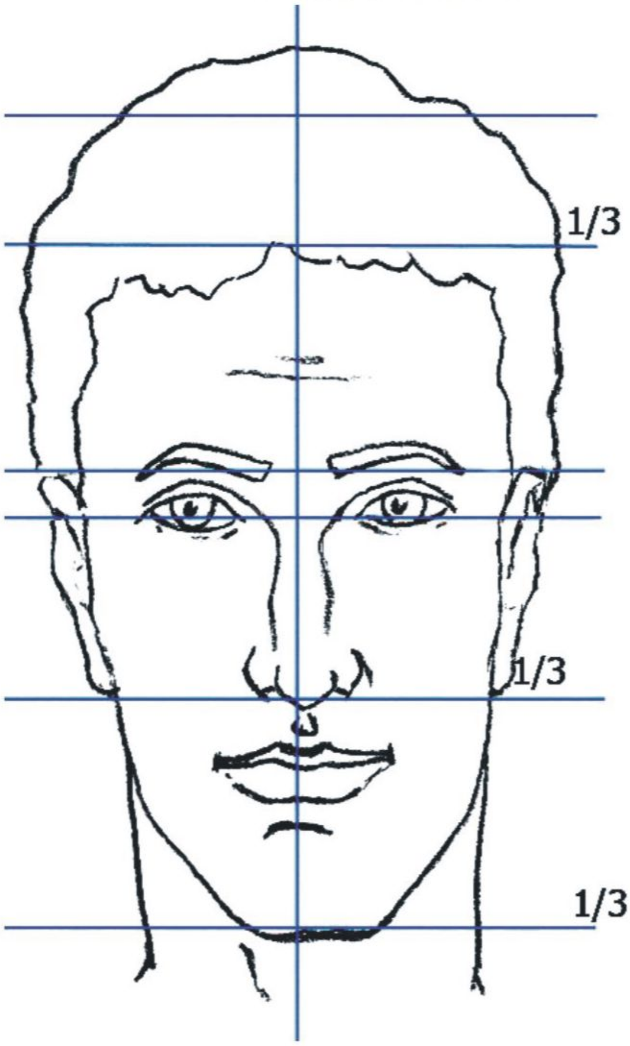


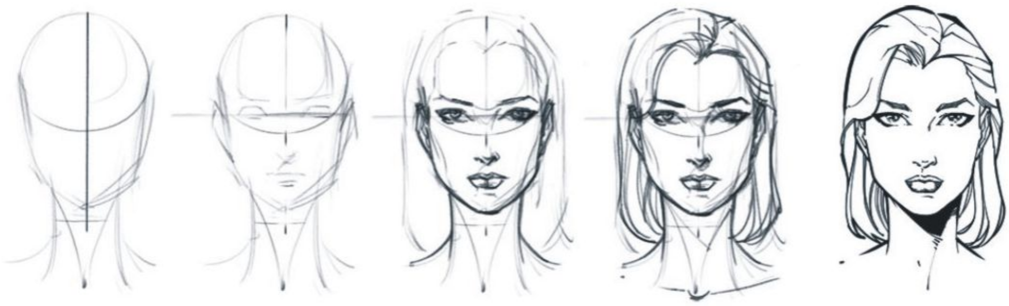

## अभ्यासार्थ रेखांकन

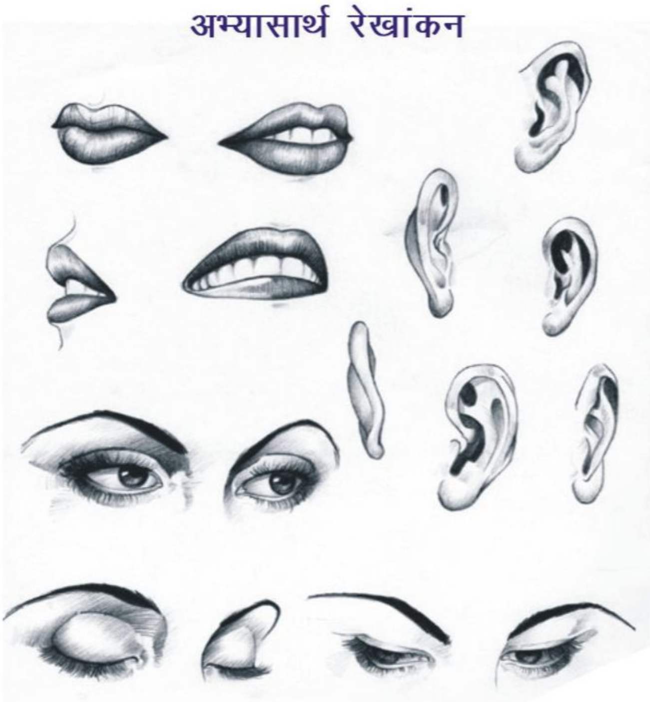

## अभ्यासार्थ रेखांकन

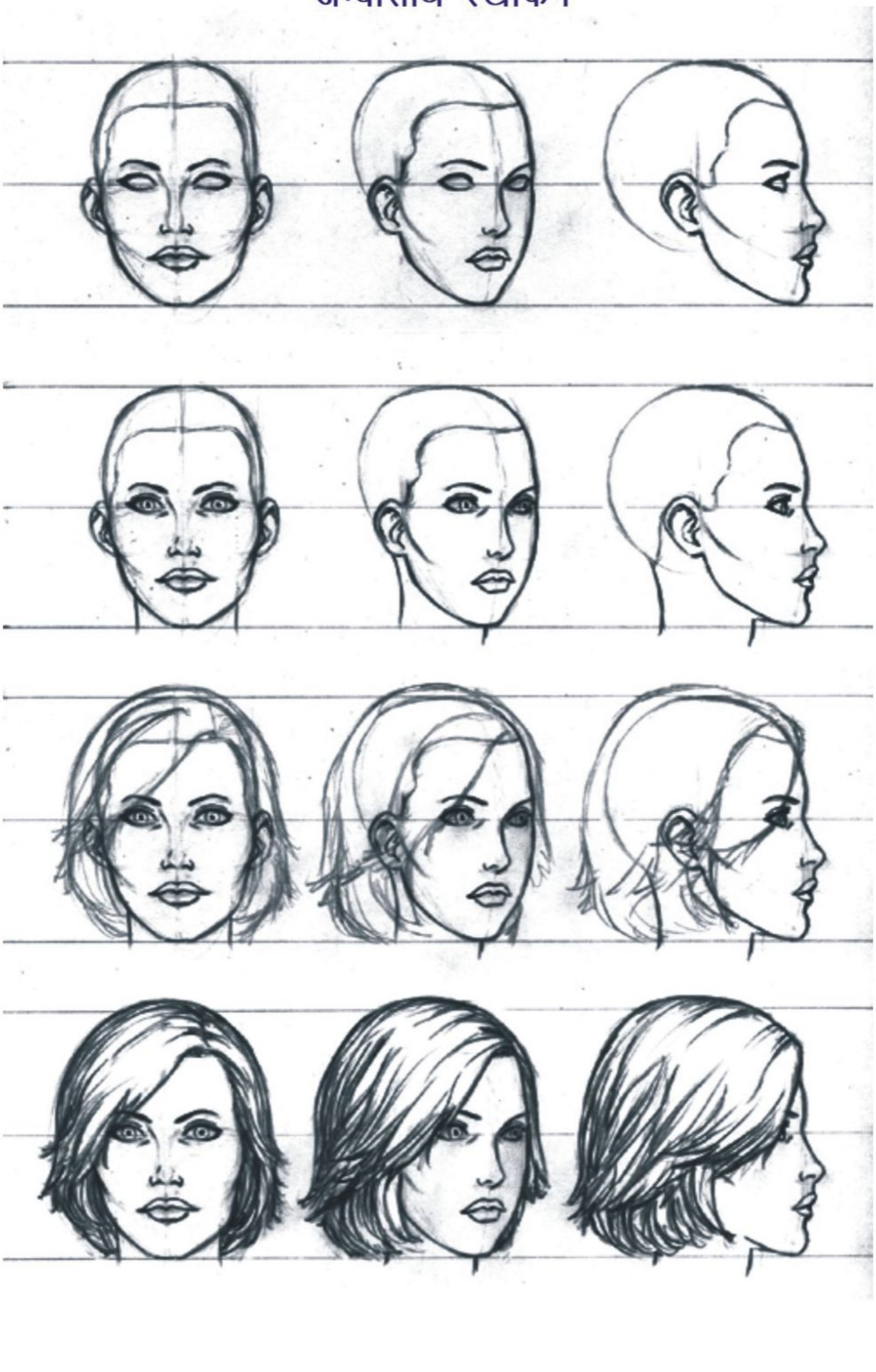

## अभ्यासार्थ रेखांकन

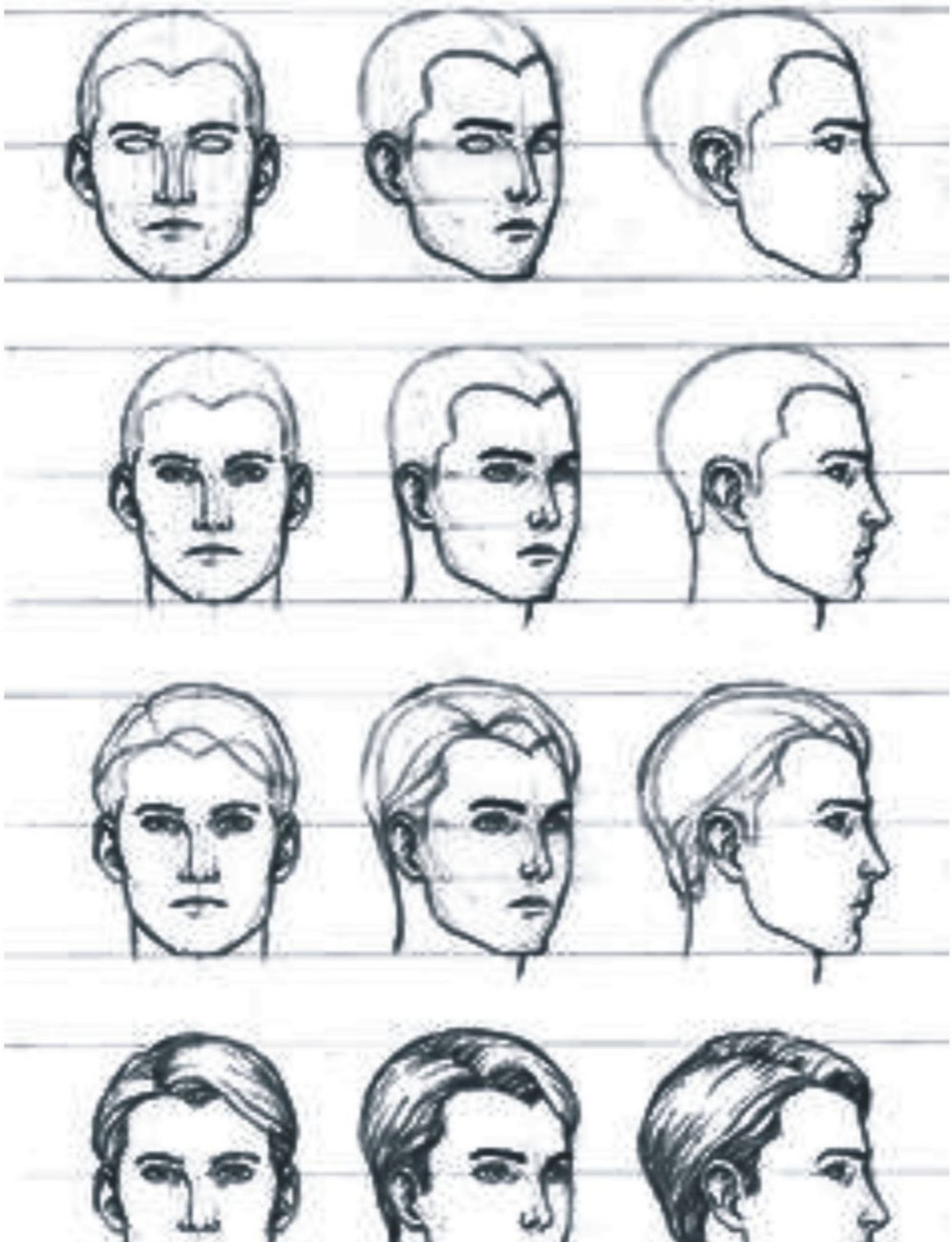

# संगीत के पारिभाषिक शब्द

## संगीत

**– "गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीत मुच्यते"**

गीत वाद्य व नृत्य तीनों का सम्मिलित रूप संगीत है। वस्तुतः तीनों विद्याएँ एक दूसरे की सहायक हैं इनमें गीत की प्रधानता मानी जाती है गायन के अनुकूल वाद्यों का निर्माण आदिम काल से होता आया है तथा गीत के भावों का अभिनय युक्त प्रदर्शन नृत्य की संज्ञा पाता है, ललित कलाओं में संगीत का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। हर युग में संगीत, संस्कृति का साथी रहा है।

संगीत कला भौतिक उत्कर्ष व यश, प्रसिद्धि के साथ आध्यात्मिक उन्नति का भी साधन रही है। भारत
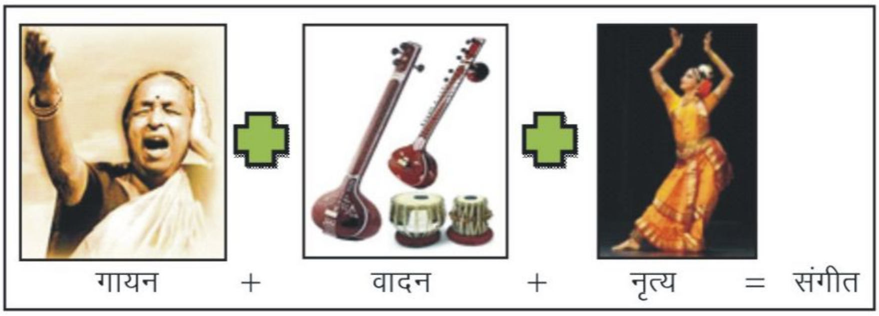
में भक्ति की सभी शाखाओं में संगीत को महत्व दिया गया है। प्राचीन काल में इसे 'गंधर्व' शब्द प्राप्त था 'सामवेद' पूर्णतः संगीत मयी रचना है तथा 'गंधर्व वेद' इसका उपवेद माना जाता है। नाद साधना इसकी विषयवस्तु है।

भारत में दो प्रकार की संगीत पद्धतियाँ प्रचलित हैं–

1. उत्तरभारतीयसंगीत पद्धति
2. दक्षिणभारतीयसंगीत पद्धति

वर्तमान में संगीत की अनेक शाखाएँ तथा उनमें रोजगार के अवसर है। मनोविज्ञान, चिकित्सा, कृषि पर्यटन, समाज विज्ञान व मनोरंजन आदि क्षेत्रों में संगीत की उपयोगिता सर्वविदित है।

## नाद

शास्त्रीय व्याख्या –

"नकारं प्राणनामानं, दकारं नलं बिदुः
जातप्राणाग्नि संयोगात्तेन नादो भिधीयते"
– संगीतरत्नाकर

नाद की रेखीय आवृत्ति

'न' अर्थात् प्राण,वायु एवं 'द' अर्थात् अग्नि के परस्पर संयोग से नाद की उत्पत्ति मानी जाती है। सम्पूर्ण जगत नाद मय है। जड़, चेतन, चर, अचर सर्वत्र नाद की सत्ता है। हमारे चारों ओर व्याप्त असंख्य ध्वनियों में से नियमित आवृत्ति युक्त ध्वनियाँ जो संगीत हेतु उपयोगी हैं नाद कहलाती है।

नाद के दो भेद हैं–

1. आहत नाद
2 अनाहत नाद

– जो नाद किन्हीं दो वस्तुओं के परस्पर घर्षण, आघात द्वारा उत्पन्न होते हैं वह आहत नाद है। संगीत में नाद के इसी स्वरूप का उपयोग होता है।

– अनाहत नाद स्वयं भू(स्वयं उत्पन्न) ध्वनि है। योगी, महात्मा, संत, ऋषि अनहद की साधना करते हैं, नाभि से निरन्तर बिना आघात की ध्वनि गुंजायमान होती है इसी की अनुभूति योग में अनहत नाद कहलाती है यह संगीतोपयोगी नहीं है।

सरल विवेचना – किसी भी वस्तु या पदार्थ में आघात या घर्षण से कम्पन, आंदोलन उत्पन्न होते हैं ये कम्पन्न दो प्रकार के होते हैं – नियमित (नाद) अनियमित (शोर या कोलाहल)

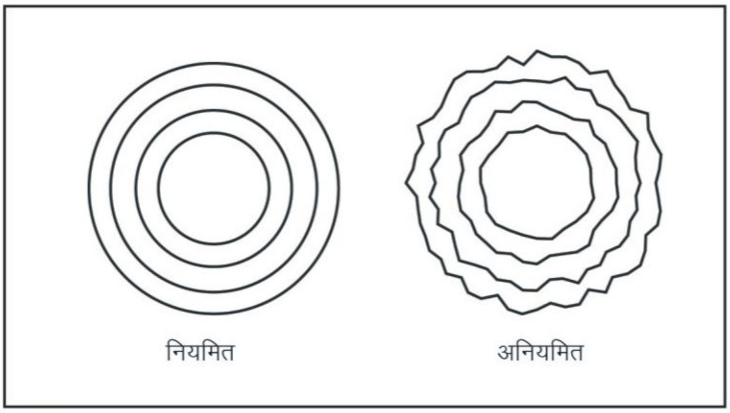

नियमित कम्पन्न मधुर, व संगीतोपयोगी होते हैं शास्त्र में इसे ही नाद कहा जाता है अनियमित आंदोलन कर्णकटु व श्रोता को कष्टदायी होते हैं, इसे शोर, कोलाहल या रव कहते है। उदाहरण –

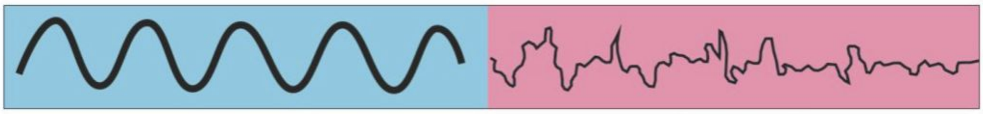

संगीत उपयोगी ध्वनि कोलाहल / शोर

## श्रुति

### शास्त्रीय व्याख्या –

शास्त्रों में कहा गया है– "श्रुयते इति श्रुतिः" अर्थात् जो कानों तक सुनाई दे वह श्रुति है। 'श्रु' अर्थात् श्रवण करना। पं. भातखंडे ने श्रुति की व्याख्या को और अधिक स्पष्ट किया है–

नित्यं गीतोपयोगित्वम मिझेयत्वमप्युत।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुति लक्षणम्।।
– अभिनव राग मंजरी

अर्थात् ऐसी ध्वनियाँ जो गायन में उपयोगी हो तथा एक दूसरे से पृथक्–पृथक् की जाती हो श्रुति कहलाती है। शास्त्र में इनकी संख्या 22 मान्य है।

सरल विवेचना – पूर्व में नाद की व्याख्या की गई है। संगीतोपयोगी ध्वनियां (नाद) असंख्य है। लेकिन एक निश्चित आवृत्ति से उसकी दुगुनी आवृत्ति के मध्य जिन नादों के ऊँचे नीचेपन को स्पष्ट महसूस कर सकें वह श्रुति है। अर्थात् नाद समूह में से स्पष्टतः अलग–अलग महसूस की जाने वाली ध्वनियां श्रुति कहलाती हैं। उदाहरण –

उक्त उदाहरण में वैज्ञानिक रूप से तो सभी नाद अलग–अलग हैं लेकिन प्रयोग करने पर 100 व 101 के अंतर को मनुष्य के कान अलग नहीं कर पाते अतः जिस दूरी पर पहले नाद / ध्वनि को दूसरे नाद / ध्वनि से कान अलग कर पाएँ (उदाहरण में–100 107,113,119,125.... ) वह ध्वनि श्रुति है।

उदाहरण –

दैनिक जीवन में हम बाजार से सामग्री क्रय करते है। इलेक्ट्रिक तराजू पर 1000 ग्राम 1001 ग्राम अलग–अलग दिखाई देंगे लेकिन हाथ तराजू पर दोनों वजन समान है। हाथ तराजू पर एक तरफ इतना वजन बढ़ाएँ कि 1000 ग्राम से अलग दिखाई दे यह स्थिति संभवतः 1004–1005 ग्राम पर आएगी। बस प्रथम 1000 ग्राम अवस्था व 1005 ग्राम अवस्था नाद में श्रुति को स्पष्ट करती है।

## स्वर

शास्त्रीय व्याख्या – श्रुत्यंतर मावित्वं यस्यानुरणनात्मकः। संगीत दर्पण

अर्थात् श्रुति में अनुरणन / गूँज / नियमित स्थिरता स्वर की कारक है। स्वर मधुर व कर्णप्रिय होते है। नियमित व स्थिर आंदोलन वाली ध्वनियाँ स्वर कहलाती है। श्रुतियों की समूह रूप में स्थापना अथवा श्रुतियों में से अंतराल पर चयनित ध्वनियाँ स्वर है। एक सप्तक में सात शुद्ध व पाँच विकृत स्वर, कुल 12 स्वर होते हैं। स्वरों की उत्पत्ति का एक मत पशु–पक्षियों को मानता है। एक अन्य मत मानव शरीर के यौगिक चक्रों अर्थात् स्वर उत्पत्ति मानता है।

| स्वर | पूरा नाम | उत्पत्ति |
|---|---|---|
| सा | षड्ज | मोर |
| रे | ऋषभ | चातक |
| ग | गांधार | बकरा |
| म | मध्यम | कौआ |
| प | पंचम | कोयल |
| ध | धैवत | मेंढ़क |
| नि | निषाद | हाथी |

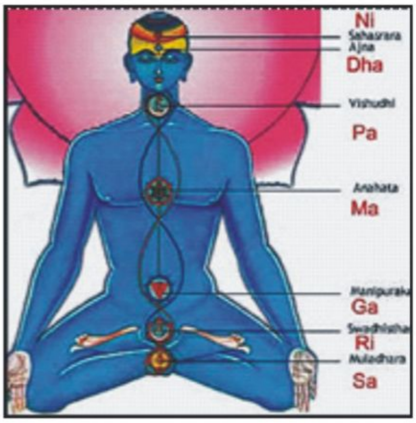


स्वरों की यौगिक स्थिति

**सरल विवेचना** – संगीत कला हेतु 'स्वर' एक आवश्यक तत्व है। स्वर की उत्पत्ति का कारक 'श्रुति' है। स्वर व श्रुति का गहरा सम्बन्ध है। सुप्त अवस्था में नाद श्रुति है तथा संगीत में उपयोग लेने के दौरान स्वर कहलाती है। इन्हें उक्त रेखाओं द्वारा समझा जा सकता है।

नाद में श्रुति का आरेख

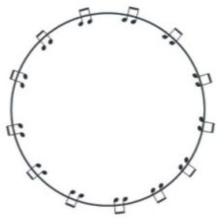

श्रुति में से स्वर का आरेख

भारतीय संगीत में एक समय में कम से कम 5 व अधिकतम 7 ध्वनियाँ प्रयोग में लेते है। प्रयोग में आने वाली ध्वनियां स्वर है शेष श्रुति है।

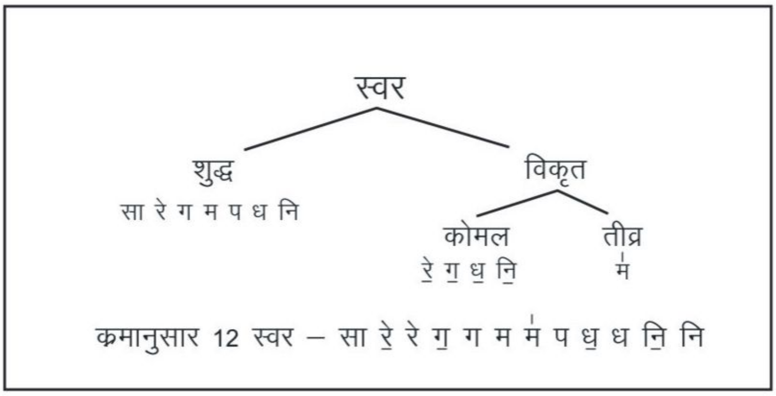


## सप्तक

**शास्त्रीय व्याख्या** –निश्चित श्रुति अंतराल पर क्रमानुसार सात स्वरों का समूह सप्तक कहलाता है। 22 श्रुति में विद्वानों ने सात शुद्ध व 5 विकृत स्वरों की स्थापना की है। प्राचीन काल में सप्तक को ग्राम कहा जाता था। इसके विकास का एक सुदीर्घ इतिहास है। शास्त्रों में मंद्र, मध्य व तार तीन सप्तकों का उल्लेख मिलता है। आवश्यकतानुसारअतिमंद्र व अतितारसप्तकों का प्रयोग किया जाता है।

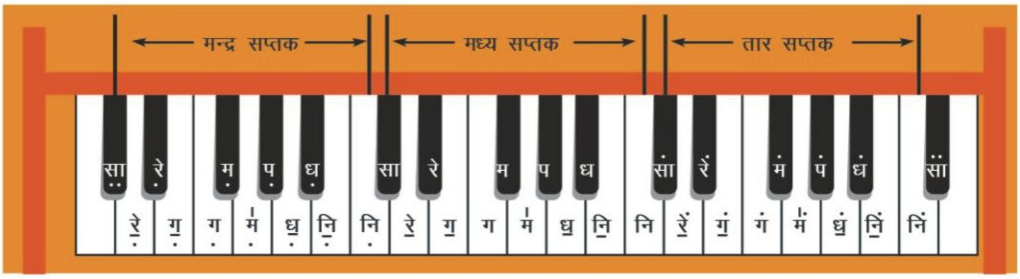


मन्द्र सप्तक – नीचे बिन्दी, मध्य सप्तक – कोई चिन्ह नहीं, तार सप्तक – ऊपर बिन्दी

**सरल विवेचना** – सात स्वरों के समूह को सप्तक कहते है। सप्तक तीन होते हैं– मन्द्र, मध्य और तार। मध्य सप्तक अर्थात् हमारी साधारण बोली में जब हम बातचीत/या गायन करते हैं, तब हमारी ध्वनि की तारता मध्य सप्तक में होती है।

मध्य सप्तक से नीचे जिस सीमा तक हमारी आवाज पहुँचे, वह मन्द्र सप्तक है। अर्थात् प्रयास पूर्वक गंभीर/भारी या अंतः स्थल की ध्वनि निकालना इन्हें मन्द्र सप्तक के स्वर कहा जाता है।

मध्य निषाद से ऊपर जिस सीमा तक हमारी आवाज जाती है, उन स्वरों को तार सप्तक के स्वर कहा जाता है। अर्थात् जोर देकर ऊँचे स्वरों में गायन करना।

**मन्द्र**– प्रयास पूर्वक गंभीर ध्वनि निकालना | **मध्य**– साधारण ध्वनि में गायन | **तार**– जोर देकर ऊँचे स्वरों में गायन

## आरोह

आरोह शब्द "रोहण" का एक रूप है। अर्थात् ऊपर जाने का क्रम, चढ़ते क्रम में। संगीत में स्वरों का नीचे से ऊँचे स्वरों की ओर जाने की क्रिया आरोह कहलाती है। ध्वजारोहण, अश्वारोहण अश्वारोही आदि ...... जैसे – सा रे ग म प ध नि सां।

## अवरोह

अवरोह अर्थात् अवरोहण, नीचे जाने का क्रम, उतरना आदि। ऊँचे स्वर से नीचे स्वर की ओर उतरने की क्रिया अवरोह कहलाती है। जैसे – सां नि घ प म ग रे सा ।

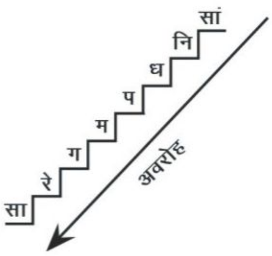


## महत्वपूर्ण बिन्दु

1. गीत, वाद्य व नृत्य – तीनों कलाओं का समावेश संगीत है।
2. नाद : संगीतोपयोगी ध्वनियों का समूह। भेद– आहत व अनाहत।
3. श्रुति : एक–दूसरे से अलग स्पष्ट पहचानी जाने योग्य ध्वनियाँ इनकी संख्या 22 मानी जाती है।
4. स्वर : स्थिर व कर्णप्रिय ध्वनि। संख्या सात – सा रे ग म प ध नि।
5. सप्तक : सात स्वरों का समूह। तीन भेद– मन्द्र, मध्य व तार।
6. आरोह : स्वरों का नीचे से ऊपर चढ़ना। यथा – सा रे ग म।
7. अवरोह : स्वरों का ऊपर से नीचे उतरना । यथा – सां नि ध प।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

**बहुवैकल्पिक प्रश्न –**

1. संगीत में कौन से तत्व समाहित है–

   ((अ) गायन (ब) वादन (स) नृत्य (द) उपरोक्त सभी

2. नाद कितने प्रकार के होते है–

   (अ) 4 (ब) 3 (स) 2 (द) 1

3. संगीत में श्रुतियों की संख्या मानी जाती है–

   (अ) 20 (ब) 22 (स) 25 (द) 30

4. मोर से किस स्वर की उत्पत्ति मानी गई है–

   (अ) षड्ज (ब) मध्यम (स) पंचम (द) निषाद

5. सप्तक में शुद्ध स्वरों की संख्या है–

   (अ) 5 (ब) 6 (स) 7 (द) 8

**लघूत्तरात्मक प्रश्न**

1. नाद की परिभाषा देते हुए इसके भेद समझाइये।
2. श्रुति व स्वर में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
3. श्रुति की परिभाषा दीजिये।
4. स्वर किसे कहते है।
5. आरोह व अवरोह को समझाइये।

**उत्तरमाला बहुवैकल्पिक प्रश्न**

1. द 2. स 3. ब 4. अ 5. स

# भारतीय संगीत में वाद्यों के प्रकार

भारतीय संगीत में वाद्यों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। आदि काल से ही भारतीय संगीत में वाद्यों का प्रयोग होता आया है। अजंता, एलोरा तथा एलिफेंटा की चित्रकारी, मोहनजोदरों तथा हड़प्पा के अवशेष तथा रामायण, महाभारत तथा उपनिषदों आदि प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न स्थानों पर अनेक वाद्यों का उल्लेख हुआ है। भगवान शंकर के हाथों में डमरु, नारद जी के हाथों में एकतारा तथा सरस्वती मा सदैव वीणा वाद्य के साथ ही चित्रित किये गए है। शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त लोक संगीत तथा चित्रपट संगीत में भी कोई न कोई वाद्य यंत्र अवश्य रहते हैं। ग्रामीण रीति रिवाज़ों, मान्यताओं एवं संस्कारों में तो प्रत्येक शुभ कार्य में वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। पूरा विश्व भी भारत में प्रचलित वाद्यों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है।

प्राचीन शास्त्रों में नाद के पा भेद माने गए है :

1. नखज 2. वायुज 3. चर्मज 4. लोहज5. शरीरज

अर्थात ध्वनि उत्पादक 5 तत्व होते हैं – ताार वाद्यों को नख की सहायता (नखज) से बजाया जाता है। बासुरी, शहनाई आदि वाद्यों को हवा, फूक, वायु माध्यम (वायुज) से बजते है। ढोल, मृदंग आदि वाद्यों को चमड़े (चर्म) से बजाते है। मंजीरा, घंटी, चिमटा, करताल आदि वाद्यों में धातु आदि को आपस में टकराकर (लोहज) ध्वनि उत्पन्न की जाती है।

इनके अतिरिक्त मानव कण्ठ को प्राचीन शास्त्रों में नैसर्गिक (शरीरज) ध्वनि उत्पादक माना है। जिसके लिए ''गाज वीणा'' संज्ञा थी।

उक्त पाच नाद भेदों में प्रथम चार भेद मानव निर्मित हैं।

**ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिर मेव च।**
**चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोघं लक्षणाचितम्।।**

–नाट्य शास्त्र

उक्त चारों भेदों को नाट्यशास्त्र में और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि –

**तर्त तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।**
**घनं तालुस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।**

– नाट्य शास्त्र

अर्थात तार वाद्य, पुष्कर (मृदंग आदि वाद्य) ताल वाद्य व बांसुरी आदि वाद्य उक्त श्रेणियों के अंतर्गत समाहित हैं।

तानसेन कृत संगीत सार में 'अवनद्ध' को 'वितत्' नाम दिया है। जो कि वर्तमान में तत् की ही एक

श्रेणी वितत है अवनद्ध श्रेणी नामकरण प्राचीन ही है।

**तत को पहिले कहते हैं वितत दूसरो जान।**
**तीजो घन चौथो सिखार तानसेन परमान।।**
**तार लगे सब साज के, सो तत् ही तुम मान।**
**चरम चढ्यो जाको मुखर, वितत् सु कहे बखान।।**
**कंस ताल के आदि दै, घन जिय जानहु मीत।**
**तानसेन संगीत रस, बाजत सिखार पुनीत।।**

–तानसेन कृत संगीत सार

जो भी हो प्राचीन काल से शास्त्रीय संगीत व लोक संगीत के समस्त वाद्यों को मुख्यतया चार भागों में ही वर्गीकृत करने की परम्परा है – तत्, अवनद्ध, सुषिर एवं घन वाद्य।

ऊपर वर्णित वाद्यों के चार प्रकार मानव निर्मित है। इनकी ढाँचागत निर्माण सामग्री प्रकृति प्रदत्त है, जैसे लकड़ी, हड्डी, बाँस, धातु, तुम्बी, चमड़ा आदि।

वादन कला का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अभिव्यक्ति के लिए वाद्य संगीत को अन्य किसी कला की आवश्यकता नहीं है। बल्कि वादन कला– गायन, नृत्य तथा नाटक उक्त तीनों के प्रभावी प्रदर्शन हेतु अत्यावश्यक है। सामाजिक जीवन के अनेक अवसरों उत्सवों पर शुभ व सफलता स्वरुप वाद्य संगीत की ध्वनियाँ गुंजायमान की जाती है। मांगलिक कार्यो व विवाह के समय, शहनाई, नगाड़ा, बैण्ड–ढोल। पूजा आराधना में घण्टी, शंख, झांझ, घंटा, झालर आदि। रणभूमि में – धौंसा, दुन्दुभि, तुरही आदि।

वाद्यों की ऐतिहासिकता, विशिष्टता व महत्व इससे भी प्रमाणित होती है कि भगवान कृष्ण के हाथ में मुरली, ब्रह्मा के हाथ में करताल, गणेश के हाथ में मृदंग, शंकर के हाथ में डमरु व देवता स्वर व ताल हेतु विविध वाद्यों का वादन करते है।

ब्रह्मा का करताल, कृष्ण का मुरली रुप जो पाया है।
शिव का डमरु, वीणा पाणि माँ, सारी स्वर की माया है।।

भारतीय संगीत में अनेकानेक वाद्य प्रचलन में है। वाद्य किस प्रकार का है यह समझने के लिए सभी वाद्यों का वर्गीकरण किया गया था। ये वर्गीकरण वाद्यों के आकार, प्रकार तथा वाद्य पद्धति को ध्यान में रख कर किया गया था। भरत मुनि द्वारा लिखित भारतीय संगीत के आधार ग्रन्थ 'नाट्य शास्त्र' के अनुसार वाद्यों को 4 भागों में वर्गीकृत किया गया था।

1. तत वाद्य
2. अवनद्ध वाद्य
3. सुषिर वाद्य
4. घन वाद्य

### तत वाद्य

वे वाद्य जिनमें तंत्री अथवा तार से ध्वनि उत्पन्न होती है, उन्हें तत वाद्य कहते हैं जैसे सितार, सरोद, तानपुरा, सारंगी, बेला (वायलिन) इत्यादि। वीणा को तत वाद्यों की जननी माना जाता है। इन सभी तत वाद्यों को 2 भागों में बाँटा जा सकता है – तत तथा वितत।

1. तत वाद्यों की श्रेणी में वे वाद्य आते है जिन्हें मिज़राब, कोण अथवा किसी वस्तु की टंकार देकर बजाते है जैसे वीणा, सितार सरोद, तानपुर आदि।
2. वितत वाद्य की श्रेणी में वे वाद्य आते है जिन्हें गज की सहायता से बजाया जाता है जैसे, बेला (वायलिन) इसराज आदि।

भारत रत्न पंडित रविशंकर जी सितार के, मोहन वीणा–पं. विश्वमोहन भट्ट, रुद्र वीणा– उ. असद अली खां, सरोद– उ. अमजद अली खां, सारंगी– पं. राम नारायण, वायलिन–पं. वी.जी.जोग विश्व प्रसिद्ध वादक हैं जिन्होंने तत् वाद्य के माध्यम से भारतीय संगीत का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार किया।

### अवनद्ध वाद्य

भारतीय वाद्यों में दूसरा वर्ग अवनद्ध वाद्यों का है। इन वाद्यों के मुँह पर चमड़ा मण्ढा हुआ रहता है। ये वाद्य भीतर से खोखले होते है। इन वाद्यों में चमड़े अथवा खाल पर आघात करने से ध्वनी उत्पन्न होती है जैसे तबला, पखावज, ढोलक, डमरु, नगाड़ा आदि। इनका प्रयोग ताल देने के लिए होता है। इन वाद्यों में एक ही स्वर निकलता है इसलिए इन वाद्यों में स्वर की अपेक्षा लय की प्रधानता रहती है। ये वाद्य मुख्यतः गायन और वादन की संगति के लिए प्रयोग किये जाते है। उस्ताद ज़ाकिर हुसैन तबला, पं. भवानी शंकर पखावज के विश्व प्रसिद्ध वादक हैं। जिन्होंने पूरे विश्व में इस वाद्य के माध्यम से भारतीय संगीत का प्रचार व प्रसार किया।

### सुषिर वाद्य

जिन वाद्यों में स्वर की उत्पत्ति फूँक अथवा वायु (हवा) द्वारा होती है वे सुषिर वाद्य कहलाते है जैसे बाँसुरी, शहनाई, बीन, शंख, तुरई, बिगुल, हारमोनियम आदि। ये वाद्य स्वर वाद्यों की श्रेणी में आते है अर्थात इन वाद्यों में संगीत में प्रयुक्त सार स्वर सा रे ग म प ध नी निकाले जा सकते है। उ. बिस्मिल्लाह खां शहनाई के एवं पंडित हरिप्रसाद चौरसिया बांसुरी के विश्व प्रसिद्ध वादक हैं जिन्होंनें इन वाद्यों के माध्यम से भारतीय संगीत का प्रचार व प्रसार किया।

### घन वाद्य

वाद्यों का अंतिम प्रकार घन वाद्य हैं। इन वाद्यों में धातु अथवा लकड़ी की चोट या आघात से स्वर की उत्पत्ति होती है जैसे जल तरंग, मंजीरा, झांझ, करताल, घंटा आदि। इन वाद्यों में कुछ वाद्य ताल वाद्य होते है तथा कुछ स्वर वाद्य होते हैं। खरताल, झांझ, मंजीरा आदि ताल वाद्यों के उदाहरण है तथा संतूर, जलतरंग आदि स्वर वाद्यों के उदाहरण है। पंडित विक्कू विनायक राम घट्म वाद्य के विश्व प्रसिद्ध वादक हैं जिन्होंने पूरे विश्व में इस वाद्य के माध्यम से भारतीय संगीत का प्रचार व प्रसार किया।

## भारतीय संगीत के तत वाद्य

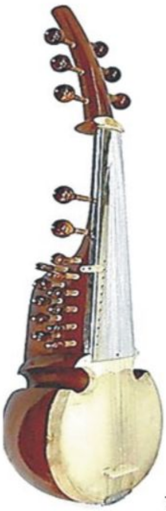

सरोद

सारंगी

तानपुरा

बेला(वायलिन)

सितार

इसराज

वीणा

# भारतीय संगीत के अवनद्धवाद्य

तबला

मृदंग

पखावज

चेंडा

डमरु

नगाड़ा

# भारतीय संगीत के सुषिरवाद्य

हारमोनियम

शहनाई

नाद स्वरम्

बाँसुरी

## भारतीय संगीत के घनवाद्य

घटम्

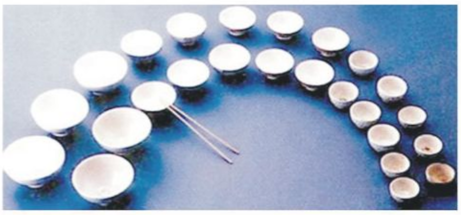

जलतरंग

घुंघरू

करताल

## महत्वपूर्ण बिन्दु :

1. प्राचीनकाल से वाद्यों के चार वर्ग प्रचलित हैं – तत्, अवनद्ध, सुषिर एवं घन।
2. तत् वाद्यों में तार, अवनद्ध वाद्यों में चमड़ा आदि से मण्ढ़ा होना, सुषिर वाद्यों में हवा या फूँक का प्रयोग तथा घन वाद्यों में परस्पर धातु आदि को टकराकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है।
3. प्राचीन शास्त्रों में इनके समकक्ष नखज, चर्मज, वायुज लोहज आदि नाद की श्रेणियां है।
4. प्रायः समस्त वाद्य मानव निर्मित हैं तथा इनकी निर्माण सामग्री प्रकृति प्रदत्त होती है।
5. प्रभावी प्रदर्शन हेतु वादन कला स्वतंत्र है अन्य कलाओं पर आश्रित नहीं है।
6. भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में ब्रह्मा, सरस्वती, कृष्ण, शंकर, गणेश आदि देव वाद्यों के अधिष्ठाता हैं।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

### बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. वाद्यों को कितने वर्गो में बाँटा गया है?
   (अ) एक (ब) दो (स) तीन (द) चार
2. जिन वाद्यों को फूँक या हवा से बजाते हैं, कहलाते हैं?
   (अ) तत वाद्य (ब) अवनद्ध वाद्य (स) सुषिर वाद्य (द) घन वाद्य
3. भारत रत्न पं. रविशंकर किस वाद्य के लिए प्रसिद्ध हुए है?
   (अ) सरोद (ब) सितार (स) शहनाई (द) तबला
4. भगवान शंकर के हाथों में कौन सा वाद्य सुशोभित है?
   (अ) बाँसुरी (ब) करताल (स) वीणा (द) डमरु
5. चर्मज श्रेणी के वाद्य हैं?
   (अ) बाँसुरी, शहनाई (ब) वीणा, सितार (स) तबला, ढोलक (द) करताल, मंजीरा

### लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. सुषिर वाद्य किसे कहते हैं? उदाहरण सहित समझाइये।
2. अवनद्ध वाद्यों की प्रकृति बताइये।
3. भारतीय परम्परा में किन्हीं 4 देवताओं के नाम वाद्य सहित लिखिए।
4. वाद्यों की चार श्रेणियों के दो–दो वाद्यों के नाम लिखिए।
5. तत् व वितत् के भेद को स्पष्ट कीजिए।

### उत्तरमाला बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. द 2. स 3. ब 4. द 5. स

# राजस्थान का लोक संगीत

### लोक एवं लोक संगीत क्या है?

'लोक' शब्द में किसी क्षेत्र तथा वहाँ रहने वाली जनता दोनों का भाव सम्मिलित है। लोक संगीत के स्वर सदियों से जन–मन को आंनदित करते रहे है। इसी सुरीली परम्परा को लोग पीढ़ी दर पीढ़ी ग्रहण करते चले जाते हैं, यही लोक संगीत है। लोक संगीत सीधे सादे सामान्य लोगों के सुख–दुःख, प्रेम, करूणा, आनन्द, संवेग की संगीतमयी अनुभूतियाँ हैं। महात्मा गाँधी ने लोक संगीत को ''संस्कृति का पहरेदार'' कहा है। शास्त्रीय संगीत की साधना में आवश्यक प्रशिक्षण तथा  शास्त्र व क्रियात्मक दोनों पक्षों की साधना है, वहीं लोक संगीत सहज भावनाओं से प्रकट होता है तथा परम्परा से हस्तांतरित होता आया है। लोक संगीत की साधना में शास्त्रीय अध्ययन व आवश्यक क्रियात्मक प्रशिक्षण दोनों पक्षों की आवश्यकता नहीं है।

लोक संगीत में गीतों का महत्व अधिक है ,वाद्यों का सहयोग पाकर ये गीत अधिक सुंदर व अंलकृत हो जाते है तथा आनंदमयी भावों को शारीरिक अंगों द्वारा नृत्य रूप में प्रदर्शन करना लोक नृत्य की संज्ञा पाते है। इसी आधार पर लोक संगीत की अपनी कुछ निजी विशेषताएँ हैं–

### लोक संगीत की विशेषताएँ –

1. लोक संगीत सामूहिक है। ये लोक जीवन की सम्पत्ति हैं तथा वैयक्तिकता से परे है।
2. ये परम्परा से हस्तांतरित व शोधित होता रहता है एवं मौखिक  है।
3. लोक संगीत यथार्थवादी, सहज अनुभूतिपूर्ण व भावनाओं की गहराई युक्त होता है।
4. लोक संगीत आनन्द, आशा, उत्साह, सकारात्मकता व सरलता से पूर्ण होता है। अतः ये लोक जन जीवन को नई ऊर्जा प्रदान करता है।
5. पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्ध लोक गीतों की विशेषता है। पर्वों, त्यौहारो, धार्मिक मान्यताओं, रीति–रिवाजों, रहन–सहन, वेशभूषा, संस्कारों के साथ इनका अटूट सम्बन्ध है।
6. धार्मिक मान्यता, मूल परम्परा, जन विश्वास, लोक आचरण, इतिहास व संस्कृति विषयों के अध्ययन हेतु लोकगीत महत्वपूर्ण सामग्री है।
7. लोक गीतों में स्वर संख्या सीमित होती है शब्दों के साथ लय संतुलन चलता है।

### राजस्थान का लोक संगीत–

राजस्थान लोक संगीत की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध प्रांत है। यहाँ का इतिहास संघर्ष, वीरता, त्याग, स्नेह, प्राकृतिक विविधता से युक्त बहुरंगी संस्कृति का मंच है। (गायन/वादन/नृत्य) तीनों की यहाँ समृद्ध परम्परा है। राजस्थान के लोक संगीत के आकर्षण में सम्पूर्ण विश्व के पर्यटक खिंचे चले आते है। लोक

देवी–देवता– भैरूजी, झूंझार जी, रामदेव जी,तेजाजी, पाबूजी, हडबूजी, सतीमाता आदि की गाथाएँ, मठ, धामधूणियाँ, विभिन्न जातियों– लंगा, मांगणियार, कामड़, भाट, ढोली, नट, कलावंत, राणा, भोपा, सांसी कंजर मिरासी, जोगी राव आदि की बहुरंगी संस्कृति तथा पारिवारिक अवसरों, तीज–त्यौहारों, विवाह, मेले आदि लोक संगीत के अध्ययन हेतु विस्तृत विषय सामग्री है।

यहाँ के लोक संगीत का हम तीन उपभागों के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं–

1. राजस्थान के लोकगीत
2. राजस्थान के लोक वाद्य
3. राजस्थान के लोक नृत्य

राजस्थान के लोक गीत – राजस्थानी लोक गीतों को अध्ययन की सुलभता के लिए कई उपवर्गों में बाँटा जाता रहा है, जैसे–

– **जनसाधारण के गीत**

मौसम, त्यौहार,, संस्कार, देवी–देवता सम्बन्धी गीत

– **क्षेत्र विशेष के गीत**

मरू प्रदेश, पर्वतीय क्षेत्र, मैदानी क्षेत्र के गीत

– **व्यावसायिक जातियों के गीत**

लंगा, मिरासी, कलावंत, राव, भोपे, ढोलीआदि के गीत।

### राजस्थानी लोक गीतों में राग व ताल –

संगीत शास्त्र की दृष्टि से यहां के गीतों में मल्हार, काफी, आसावरी, देस, मांड सोरठ, भूप, कल्याण, सारंग, कालिंगड़ा, खमाज, पीलू आदि रागों से युक्त गीत उपलब्ध है, तालों में कहरवा व दादरा तो लोक गीतों की आत्मा हैं ही इनके पश्चात् दीपचंदी, रूपक, चाचर आदि है। लोक शैली में इनके नामों को तोयछो, गैर, मटकू, अढैया आदि से भी जानते है।

### गायक वर्ग –

पारिवारिक व सामाजिक अवसरों पर तो प्रायः सभी लोग प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से लोक गीतों के गायन में अपनी भूमिका निभाते है जैसे – भजन, रात्रि जागरण, पार गीत, त्यौहार, विवाह आदि संस्कारों पर। इसके अलावा राजस्थान की कुछ विशेष जातियाँ जो संगीत द्वारा ही अपनी आजीविका चलाती है, इनमें, लंगा, मांगणियार, कामड़, भाट, ढोली, नट, कलावंत, राणा, भोपा, सांसी कंजर आदि है।

### प्रमुख गीत –

इंडोनी, पीपली, मांड, कांगसियों, गोरबंद, पणिहारी, हिचकी, दारूड़ी काजलियों, काछबो, मूमल, घूमर, लूर, ओल्यूं, कुरजां, गणगौर, रसिया, बना–बनी, पांवणा, जच्चा गीत, व अनेक पारिवारिक अवसरों व लोक देवी–देवताओं के प्रचलित गीत है। राजस्थान के कण–कण में बसे ये गीत यहाँ की लोक सुषमा को प्रसारित करते है। राजस्थान में कथा गीत भी महत्वपूर्ण है। ढोला–मारू, सुल्तान–निहालदे, गोपीचंद,

भरथरी, तेजाजी, पाबूजी,रामदेव जी, नसरी जी रो मायरो आदि प्रमुख कथा गीत हैं। ये कथा गीत सामान्य गीतों से अधिक लम्बे व कथाओं पर आधारित होते है।

**कुछ प्रसिद्ध लोक गीत**

**विनायक (राग मिश्र काफी, ताल दीपचंदी)**

चलो हो गजानन जीसीड़ा रे चालां
लगन लिखाई बेगा आवां हो गजानन

कोटा री गादी पे नोबत बाजे
नोबत बाजे इंदरगढ़ गाजे
झनन–झनन झालर बाजे हो गजानन

(विवाह सम्बन्धी गीत)

**मांड (खमाज अंग से, ताल दादरा)**

केसरिया बालम आओसा
पधारो म्हारो देस

सोणे री धरती जठे, चांदी रो असमाण
रंग रंगीलो रस भरयो, म्हारों प्यारो राजस्थान, केसरिया .....

साजण आया ए सखी कांई मनवार करां
थाल भरां गज मोतियां और ऊपर नैंण धरां, केसरिया .....

(इनमें अनेक अन्य दोहे भी प्रचलित है)

**घूमर (राग जलधर सांरग– कोमल <u>ग</u> व शुद्ध ध युक्त, ताल कहरवा)**

म्हारी घूमर छै नखराली ए मां,
घूमर रमवा म्हैं जास्यां
म्हानैं रमतां ने लाडूडा लादो ए मां,
घूमर रमवा म्हैं जास्यां
म्हारी रूणक झुणक पायल बाजै

ए मां, घूमर रमवा म्हैं जास्यां
म्हानै आलीजा री बोली प्यारी लागै
ए मां, घूमर रमवा म्हैं जास्यां

(यळ गीत राजस्थान की पहचान माना जाता है गायन, वादन, नृत्य तीनों शैलियों में स्थापित गीत है)

**गणगौर (राग तिलक कामोद, ताल–दीपचंदी)**

खेलण द्यों गणगौर भंवर
म्हानै पूजण दयो गणगौर
हो जी म्हारी सहेल्यां जोवे बाट,
भंवर म्हानै खेलण दो गणगौर

माथा रे मेमद लावो भंवर
म्हारै माथा रे मेमद लाव
हो जी म्हारी रखड़ी रतन जड़ावों
भंवर म्हानै खेलण दो गणगौर

हिवड़ा ने हांसल लावों भंवर
म्हारे हिवड़ा ने हांसल लाव
हो जी म्हारै तिमण्यो पाट पुवावों
भंवर म्हानै खेलण दो गणगौर
(इसी प्रकार अन्य अंतरों में विभिन्न अंगों के आभूषणों की चर्चा है)

**राजस्थान के लोक वाद्य –**
सभी प्रकार के संगीत वाद्यों को चाहे शास्त्रीय संगीत के हों अथवा लोक संगीत के, प्रायः चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है–

**तत् वाद्य (तार लगे हुए)**
जैसे –सारंगी, रावणहत्था, तंदूरा, भपंग, कमायचा

**अवनद्ध वाद्य (चमड़े से मढ़े या ढके हुए)**
जैसे –ढोल, ढोलक, चंग, डमरू

**सुषिर वाद्य (फूँक या हवा से बजने वाले)**
जैसे – नड़, अलगोजा, सुरणाई, पूंगी, बांकिया

**धन वाद्य (धातु आदि को टकराकर)**

जैसे –खड़ताल, मंजीरा, घंटी, घुंघरू
राजस्थान में इस हेतु प्रचलित तथ्य है कि–
**''लोग जगत में यूं कहैं, बाजा साढ़ा तीन,**
**खाल, तार और फूँक का, अद्धताल सुरहीन'' ।**
अर्थात् तत्, अवनद्ध व सुषिर तो पूर्ण वाद्य हैं तथा धन वाद्यों में स्वर के बजाय केवल ताल कार्य होने से अर्द्ध श्रेणी मानी जाती है। राजस्थान की वाद्य परम्परा में उपरोक्त चारों श्रेणियों के समृद्ध वाद्य उपलब्ध है। इस क्रम में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, रूपायन –जोधपुर, जवाहर कला केन्द्र – जयपुर व लोक कला मंडल – उदयपुर के वाद्य संग्रह एवं श्री रमेश बोराणा की पुस्तक – 'राजस्थान के लोक वाद्य' स्तुत्य प्रयास है।

**तत् वाद्य –**
कमायचा, सारिंदा, रावणहत्था, बीणै/तंदूरा, सांरगी, भपंग
**अवनद्ध वाद्य –**
ढोल, नगाड़ा, ढोलक, डफ/चंग, मादल, पाबूजी के माटे, डमरू
**सुषिर वाद्य –**
अलगोजा, नड़ मुरला, सुरणाई, बीन/पूंगी, मोरचंग, मशक, भूंगल, बांकिया नागफणी
**धन वाद्य –**
खड़ताल, मंजीरा, घंटी, घुंघरू, झालट, थाली, चिमटा, मटका।

**राजस्थान के लोक नृत्य –**

अपने रीति–रिवाजों, परम्पराओं, त्यौहार, उत्सव, संस्कार आदि के दौरान लोक जन–जीवन उमंग, उल्लास व आनन्द से अभिभूत व मस्त होकर व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से लयबद्ध अंग संचालन, करता है तो यह थिरकन नृत्य कहलाती है।

लोकनृत्यों की श्रेणी में राजस्थान के लोकनृत्य अत्यन्त सुन्दर परिष्कृत व अलंकृत है। ये नृत्य सुर, लय ताल व गीत से संतुलित रूप में बँधे हुए हैं। इनके माध्यम से किसी जाति अथवा वर्ग के परिधान, आभूषण, गीत,वाद्य, परम्पराओं, रीति–रिवाजों का विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। गीतों व वाद्यों के समान ही यहाँ के नृत्यों को क्षेत्रीय, जातिगत व अवसरानुकूल श्रेणी में विभाजित कर सकते है।

**जनजातियों के नृत्य–**

भील, मीणा, सहरिया, गरासिया, कामड़, कंजर, कालबेलिया, आदि के पारम्परिक नृत्य

**क्षेत्र–विशेष के नृत्य –**

शेखावटी का गींदड़ नृत्य, मरू प्रदेश का गैर नृत्य, जसनाथियों का अग्नि नृत्य, भरतपुर का बम नृत्य, जालौर का ढोल नृत्य आदि।

## राजस्थान के तत् वाद्य

कमायचा

सारंगी

गोपीचन्द

तन्दूरा / वीणै

इकतारा

रावण हत्था

सारिंदा

भपंग

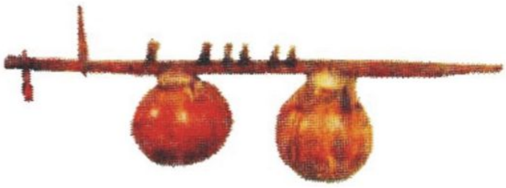
जन्तर

## राजस्थान के अवनद्ध वाद्य

ढोलक

मादल

नगाड़ा

ढोल

ताशा

घेरा

डफ/चग

डेरु

पाबू जी के माटे

डमरु

## राजस्थान के सुषिर वाद्य (फूंक या हवा से बजने वाले)

अलगोजा

पूंगी/बीन

तुरही

मोरचंग

नागफणी

बांकिया

सुरणाई

मुरला

शंख

## राजस्थान के धन वाद्य (धातु आदि को टकराकर)

मंजीरे

मटका

घुंघरु

झांझ

खड़ताल

चिमटा

राजस्थानी लोक नृत्यों ने राजस्थान को विश्व मानचित्र पर उभारने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अनेक विदेशी इनका प्रशिक्षण प्राप्त कर प्रदर्शन कर रहे हैं। कुछ प्रमुख लोक नृत्य जो राजस्थान की विशेष पहचान, तथा विशेष आकर्षण के केन्द्र है। इनमें– घूमर नृत्य, गैर नृत्य, तेराताली, चरी नृत्य, कच्छी घोड़ी नृत्य, भंवई नृत्य, कालबेलिया नृत्य, चकरी नृत्य आदि ..है।

## लोकनृत्य–

### घूमर –

घूमर अर्थात घूमना। इस नृत्य में घूमने के दौरान लहंगे/घाघरे का घेर व हाथों का लचक युक्त प्रदर्शन इसे अत्यन्त आकर्षक बनाता है। यह एकल व सामूहिक रूप में विवाह, पर्व व त्यौहारों पर सर्वत्र दर्शनीय है तथा राजस्थान की पहचान है। नृत्यांगना घूमने के दौरान झुक कर उठती है साथ में लहंगे का घेर व उंगलियों का घुमाव आकर्षण उत्पन्न करता है। यह नृत्य रजवाड़ी संस्कृति का प्रतीक है।

### गैर नृत्य –

गैर खेलना,गैर नाचना, गैरघूमना। वैसे तो होली व जन्माष्टमी के अवसर पर सम्पूर्ण राजस्थान में इसके आयोजन दिखाई देते हैं लेकिन बाड़मेर व जैसलमेर की विशेष परिधान युक्त गैर दर्शनीय है, पुरूष लोग छड़ियाँ या तलवार लेकर गोल घेरा बनाते हुए ढोल, थाली, बांकियाँ, झांझ आदि की संगति से नृत्य करते है। घेरा बनाने, वेशभूषा, वाद्य आदि में क्षेत्रीय प्रभाव से अंतर दिखाई देता है।

### तेराताली –

कामड़ जाति की नर्तकियाँ 13 मंजीरों को हाथ व पैरों में बाँधकर, नौ मंजीरे दायें पैर पर दो कोहनी पर तथा दो मंजीरे हाथों में घुमाते हुए मुँह में तलवार व सिर पर कलश रखकर मंजीरों को टकराकर ध्वनि व लय की

विविधता दिखाते हुए नृत्य करती है, इसमें पुरूष तंदूरा, ढोलक, मंजीरा की संगति से बाबा रामदेव के गीत गाते है। यह नृत्य एकल व सामुहिक दोनों रुपों में होता है

### चरी नृत्य –

सर पर कलश द्वारा स्वागत तथा प्रज्ज्वलित अग्नि दोनों शुभ सूचक माने जाते हैं। चरी नृत्य इन दोनों का समन्वय है। किशनगढ़ चरी नृत्य हेतु प्रसिद्ध है, सिर पर चरी रखकर उसमें आग की लपटे (काकड़े–कपास के बीज द्वारा) आकर्षक वेशभूषा तथा नृत्यांगनाओं द्वारा विविध आकृतियाँ बनाना इसमें महत्वपूर्ण है। यह गुर्जर जाति द्वारा प्रचलित है। प्रख्यात नृत्यांगना फलकू बाई ने इसे पेशेवर नृत्य के रुप में प्रतिष्ठित किया है।

### भंवई नृत्य –

ऐतिहासिक रूप से भंवई नृत्य के प्रारम्भ की अनेक कथाएँ है। एक मत भंवई को मूलतः गुजरात का भी मानता है, तो दूसरे मत में जाट वंश से इसकी उत्पत्ति मानी गई है। जो भी हो राजस्थान में प्रचलित शैली में सिर पर 5 से 11 घड़े रखकर, कील, तलवार, कलश, काँच के टुकड़ों, थाली के किनारों आदि पर चलकर चमत्कार प्रदर्शन युक्त नृत्य किया जाता है, इसमें शास्त्रीयता का पुट भी डालते हैं, पुरूष व महिला दोनों ही यह नृत्य करते हैं। संतुलन, तैयारी, मनोरंजन व चमत्कार प्रदर्शन इस नृत्य के विशेष गुण हैं। रुप सिंह शेखावत, कृष्णा व्यास व सांगीलाल इसके विख्यात कलाकार है।

### कालबेलिया नृत्य–

सपेरा जाति का यह नृत्य काले कपड़ों पर विशेष सजावट युक्त वेशभूषा में शरीर के लोचदार व सर्पीले प्रदर्शन के साथ किया जाता है। इसमें बीन, ढोलक, खंजरी आदि वाद्यों की संगत होती है। विश्व प्रसिद्ध नृत्यांगना गुलाबो ने इस नृत्य को विशेष पहचान दी है।

### कच्छी घोड़ी नृत्य

कुचामन, परबतसर, डीडवाना क्षेत्र से प्रचलित यह नृत्य आज सम्पूर्ण राजस्थान की पहचान है। नकली घोड़ी को नर्तक धारण कर हाथ में तलवार लेकर नकली लड़ाई का प्रदर्शन किया जाता है। वीरता व ओज को लय व गति से प्रदर्शित किया जाता है। नृत्य में कुल सात से आठ नर्तक होते है।

क्षेत्रीय भिन्नता के साथ कच्छी घोड़ी नृत्य भिन्न भिन्न नामों से अनेक राज्यों व विदेशों में भी प्रचलित है।

## महत्वपूर्ण बिन्दु –

– लोक जन–जीवन के सुख–दुःख, आनन्द, करूणा, संवेग की सुरमयी अनुभूति लोक संगीत है।

– लोक संगीत से किसी जाति, क्षेत्र अथवा वर्ग विशेष का सम्पूर्ण सांस्कृतिक अध्ययन सम्भव है।

– राजस्थान में लंगा, मिरासी, ढोली, राव, भोपे, कलावंत आदि जातियाँ पूर्णतः संगीत पर ही आश्रित है।

– राजस्थानी लोक संगीत में शास्त्रीय संगीत के गूढ़ तत्वसमाहित हैं।

– घूमर, मांड, पणिहारी, गोरबंद, चिरमी, हिचकी, ओल्यूं आदि प्रसिद्ध गीत हैं।

– राजस्थानी लोक वाद्य तत्, अवनद्ध, सुषिर व घन 4 श्रेणियों में विभाजित हैं।

– कमायचा, सारंगी, चौतारा, रावणहत्था, बीन, अलगोजा,बांकिया, नड़, चंग,ढोल, नगाड़ा, भपंग, मुरचंग, मजीरा,आदि प्रमुख वाद्य है।

– तेराताली, घूमर, कालबेलिया, भंवई, कच्छी घोड़ी, गैर, चरी आदि प्रमुख नृत्य प्रकार है।

– राजस्थान के पर्यटन उद्योग में राजस्थानी लोक संगीत का महत्वपूर्ण योगदान है।

– मांड गायन में अल्लाजिलाई बाई, कमायचा वादन में साकर खां, कालबेलिया नृत्य में गुलाबो विश्व विख्यात कलाकार हुए हैं।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

### बहुवैकल्पिक प्रश्न–

1. ''केसरिया बालम पधारो म्हारे देस'' गीत है–

| | |
|---|---|
| (अ) मौसमी गीत | (ब) मांड गीत |
| (स) देवी–देवता का गीत | (द) त्यौहार गीत |

2. 'लंगा एवं मांगणियार' हैं–

| | |
|---|---|
| (अ) लोक देवता | (ब) लोक नृत्य शैली |
| (स) संगीत आश्रित जातियाँ | (द) लोक कथाएँ |

(स) संगीत आश्रित जातियाँ (द) लोक कथाएँ

3. गुलाबो का सम्बन्ध किससे है–
   (अ) भंवई (ब) तेराताली
   (स) कालबेलिया (द) चरी नृत्य
4. निम्न में से तत् (तार युक्त) वाद्य है–
   (अ) बीन/पूंगी (ब) नगाड़ा
   (स) अलगोजा (द) रावण हत्था
5. सुमेलित कीजिये–

| | | |
|---|---|---|
| गोरबंद | – | अल्ला जिलाई बाई |
| मांड मायन | – | ऊँटों का श्रृंगार |
| कुरजां | – | कामड़ |
| मोरचंग | – | एक प्रकार का पक्षी |
| तेराताली | – | लोक वाद्य |

**लघूउत्तरात्मक प्रश्न –**

1. लोक संगीत किसे कहते हैं?
2. लोक संगीत की कोई तीन विशेषताएँ ब्ताइये?
3. राजस्थान का कोई पारम्परिक गीत लिखिए?
4. वाद्य वर्गीकरण की चारों श्रेणियों के अन्तर्गत दो दो लोक वाद्यों के नाम लिखिए।
5. घूमर नृत्य का परिचय दीजिए।

**विस्तृत प्रश्न –**

1. राजस्थानी लोक गीतों की विविधता को समझाइये।
2. वाद्य वर्गीकरण के अन्तर्गत राजस्थानी लोक वाद्यों को समझाइये।
3. राजस्थान के प्रमुख लोक नृत्यों की जानकारी दीजिये।

**उत्तरमाला बहुवैकल्पिक प्रश्न**

1. ब 2. स 3. स 4. द

# नाट्य कला का परिचय
## (एकांकी, एकाभिनय, लोक नाट्य, नुक्कड़ नाटक)

इतिहास, शोध एवं ग्रन्थों से हमें जानकारियाँ मिलती है, कि जब मनुष्य का इस पृथ्वी पर जन्म हुआ था। उस समय कोई शाब्दिक भाषा का ज्ञान नहीं था। तब मनुष्य अपने सम्वाद या अभिव्यक्ति हेतु मुख मुद्राओं व शारीरिक हाव–भाव तथा ध्वनि आदि का उपयोग करता था।

उस काल में मनुष्य एक जंगली प्राणी था। वह गुफाओं एवं कन्दराओं में निवास करता था। जलवायु व मौसम के प्रभाव से बचने के लिए पेड़ों की पत्तियों तथा जानवरों की खाल की सहायता से अपने शरीर को ढँकता था। अपने पेट की भूख मिटाने के लिए व जंगलों तथा जंगली जानवरों पर निर्भर था, वह जंगली जानवरों का शिकार कर उनके मांस से अपनी उदरपूर्ति करता था।

शिकार के समय व जिन परिस्थितियों का सामना करता था उन क्षणों को वह फुर्सत के क्षणों में खेल–खेल में अपने समूहों में नृत्य व अभिनय के द्वारा दर्शाता था।

यही नृत्य और अभिनय उसके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। कालान्तर में धीरे–धीरे समय के साथ–साथ मनुष्य का बौद्धिक विकास हुआ और मनुष्य एक समूह बनाकर रहने लगा और एक सभ्य प्राणी बन गया। अब उसने अपने लिए एक भाषा की खोज भी कर ली थी। वह समूह में रहकर अपने परिवार का विस्तार करने लगा।

एक लम्बी अवधि में धीरे–धीरे कई सभ्यताओं के निरंतर विकास करते–करते मनुष्य आज के इस आधुनिक दौर में प्रवेश कर चुका है। उसकी यह यात्रा बहुत कठिन थी और प्रत्येक क्षण उसके बौद्धिक विकास ने उसके जीवन को बहुत सरल बना दिया। परन्तु उसका मूल स्वभाव अभिनय ही था जिसके माध्यम से वह एक दूसरे से संवाद स्थापित करता था।

आज जबकि मनुष्य इतना विकास कर चुका है, फिर भी उसकी जीवन शैली का मुख्य अंग अभिनय ही  है। प्रत्येक क्षण हम सभी अपने संवाद हेतु भाषा के साथ–साथ हमारी मुख मण्डल की मुद्राओं का उपयोग साधारणतः अपनी प्रस्तुति में करते ही है। नाटक मंनोरजन से शुरू होकर आज सामाजिक,

राजनैतिक, व हमारी दैनिक जीवन शैली का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है, जो जनजागृति के साथ ही साथ अपनी मनोरंजक भूमिका अदा कर रहा है।

जब लोग नाट्य विधा को समझने लगे उस प्रारम्भिक दौर में नाटकों के मुख्य पात्र नर व नारी हुआ करते थे। एक तरह से यही नाटक के मुख्य सूत्रधार अपने अभिनय के माध्यम से अपनी बात दर्शकों तक पहुँचाते थे। समय के साथ नाटक में बहुत बदलाव आ गये और यह विद्या कई चरणों से होते हुए आज के आधुनिक दौर/युग में प्रवेश कर चुकी है।

आज नाट्य विद्या को विधिवत् रूप से कई सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों के माध्यम से पढ़ाया व सिखाया जा रहा है, जिनमें एक प्रमुख संस्थान राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली है जो कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार के अन्तर्गत आता है। यहाँ से कई नामी हस्तियों ने अभिनय की बारीकियों को सीखकर संस्थान व अपना नाम देश व दुनिया में रोशन किया है इनमे ंकुछ मुख्य नाम अनुपम खेर, नसीरूद्दीन शाह, ओम शिवपुरी, रघुवीर यादव आदि–आदि अनेक कलाकार हुये है। जिन्होंने इस तरह की सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों से अध्ययन व अध्यापन कर अपनी अभिनय प्रतिभा के द्वारा नाट्य मंचों के अतिरिक्त फिल्मों में भी अपनी अलग पहचान बनायी है।

धर्म ग्रन्थों एवं वेदों व उपनिषदों और अन्य ग्रन्थों जैसे रामायण, महाभारत आदि में भी हमें नाटक व काव्य आदि से जानकारियाँ प्राप्त होती है। वात्सायन ने भी अपने ग्रन्थ "कामसूत्र" में चौसठ कलाओं की विवेचना की है जिसमें नाटक से सम्बन्धित सामग्री हमें प्राप्त होती है। इसी प्रकार भरतमुनि ने भी अपने नाट्यशाास्त्र (भरतमुनी का नाट्यशास्त्र) में विस्तार से नौ रस "नवरस" पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

एक विद्वान अभिनव गुप्त हुए है इन्होनें अपने ग्रन्थ "अभिनव भारती" की रचना की। इन्होंने काव्य के माध्यम से रस व अभिनय द्वारा पात्र के भावों व भावनाओं तथा दर्शक आदि पर विवेचना की है। इस प्रकार से अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत कर नाटक अथवा काव्य के द्वारा नाटक, दर्शक, पात्र, भाव, रस, मंच आदि के सन्दर्भ में अपने विचारों से अवगत कराकर रस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है और इस निष्पत्ति व उत्पत्ति की समस्या को समझाने का समाधान किया है।

वर्तमान में नाटक एक व्यावसायिक युग में प्रवेश कर चुका है। जहाँ तकनीक बहुत अधिक प्रभावी

होने लगी है। एक अच्छे नाटक हेतु कुछ आवश्यक तत्व होते है जो नाटक को रूचिपूर्ण बनाकर और अधिक प्रभावी बनाते है।

## "नाटक के लिए आवश्यक तत्व"

**1. लेखन** – नाटक का प्रमुख तत्व है विचार यदि विचार नहीं होगा तो हम नाटक की कल्पना नहीं कर सकते है। इसलिए सर्वप्रथम नाटक के लिए सर्वप्रथम एक विषय का चयन कर अपने विचारों को लेखन की सहायता से संग्रहित कर एक पाण्डुलिपि या स्क्रिप्ट तैयार करनी होती है। जिसमें विषय के अनुकूल पात्रों का चयन कर उनका उचित नाम व चरित्र आदि के सन्दर्भ में पूर्ण नियोजन करना होता है। और उसको व उसके चरित्र की कल्पना को बारीकी से अपनी लेखनी में संयोजित करना होता है।

**2. वेशभूषा** –

नाटक में किस–किस तरह के पात्रों या चरित्रों का चयन किया गया है, उसके अनुसार उनके वस्त्र आदि का चयन किया जाता है। जिससे कि जिस भी पात्र की लेखक ने कल्पना की है उस पात्र की आवश्यक सामग्री जिससे की दर्शक को उसकी वेश–भूषा से ही समझ आ जाये कि अमूक अभिनेता या अभिनेत्री किस चरित्र का निर्वाह कर रहा है।

उदाहरणतः – जैसे यदि एक भिखारी का चरित्र है तो उसके अनुकूल उसके वस्त्र आदि का चयन करना होता है जिससे की दर्शक उसे देखते ही पहचान जाये की अमूक पात्र भिखारी है अथवा पागल इसका बारीकी से निरीक्षण करना होता है।

**3. रूप सज्जा** –

नाटक का महत्वपूर्ण तत्व रूप सज्जा है। इसको मैक–अप भी कहते है। नाटक का पात्र जिस किसी भी चरित्र का अभिनय कर रहा है उसकी पूर्ण

सूक्ष्म जानकारी मैकअप मैन को होनी अति आवश्यक है। अमूक चरित्र के अनुकूल उसके चहरे को सजाया जाता है। अर्थात् यदि भिखारी का चरित्र है, तो उसके बाल–दाढ़ी आदि को अव्यवस्थित रूप से सँवारना होगा। इसके विपरीत यदि राजा का चरित्र है तो उसके अनुसार आभायुक्त चमक लिए हुए सुन्दर रूप सज्जा करनी होगी। जिससे दर्शक को चरित्र समझने में कठिनाई न होने पाये।

**4. मंच सज्जा –**

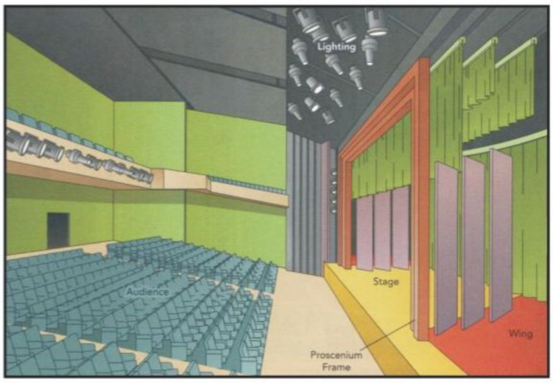


जहाँ पर नाटक खेला जाता है उस स्थान को मंच या नाटक गृह कहते है। जो कि सामने से अर्थात् दर्शकों की ओर चौड़ा तथा पीछे की ओर संकरा होता है। मंच को कथावस्तु या कहानी के अनुकूल इस तरह से व्यवस्थित करना होता है। क्योंकि मंच अभिनेता या पात्र घटनाओं के प्रभाव से उस दृश्य को आत्मसात अर्थात् भ्रमवश अभिनेता को ही चरित्र के रूप में मानने लग जाता है। इसमें मंच व्यवस्था प्रमुख भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी राजदरबार का दृश्य मंच पर जीवन्त करना है, तो राजा का सिंहासन मंच के मध्य में व्यवस्थित करना होता है। सिंहासन सुन्दर एवं आकर्षक होना चाहिए जिससे कि राजा का वैभव दिखाई दे सके। उसके पीछे मखमल आदि के सजावटी पर्दे राजा का राजचिन्ह राज पताका (झण्डा) आदि दर्शाया जाना चाहिए मंच के दोनों और द्वारपाल आदि इस प्रकार व्यवस्थित करना कि वह स्थान राजदरबार की ही अनुभूति दे।

**5. संगीत –**

संगीत नाटक की आत्मा होती है यह नाटक का अतिमहत्वपूर्ण अंग होता है। इसलिए एक अच्छे नाटककार को संगीत की भी समझ होनी चाहिए। क्योंकि नाटक को संगीत के द्वारा ही प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है। नाटक में प्रस्तुत भावों या रस सुख–दुःख, हास्य व्यंग्य, भय, क्रोध, वीभत्स, प्रेम, करूणा आदि को संगीत के द्वारा और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। संगीत का नाटक में दो तरह से उपयोग किया जा सकता है। संगीत मण्डली को मंच पर एक कोने में स्थान देकर अथवा रिकार्ड करके भी दृश्य के अनुसार उसका प्रयोग कर भी नाटक में भाव उत्पन्न किया जा सकता है।

**6. प्रकाश व्यवस्था –**

जीवन में प्रकाश का बड़ा महत्व है हमे सभी चीजें प्रकाश अर्थात् लाईट के कारण ही दिखाई देती है और

प्रकाश ही हमें अपनी और आकर्षित करता है। मंच पर प्रकाश आदि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत आती है। प्रकाश के माध्यम से ही नाटक में विभिन्न प्रभाव उत्पन्न किये जाते है। अलग–अलग दृश्यों में अलग–अलग रंगों की लाईट का प्रयोग किया जाता है, इसमें मंच में जहाँ पर कार्य व्यवहार चल रहा है उस भाग में प्रकाश तथा बाकी भाग को प्रकाश विहीन रखकर दृश्य को प्रभावी बनाया जा सकता है। जिससे की दृश्य जीवन्त हो उठे।

प्रकाश व्यवस्था नाटक का अति महत्वपूर्ण अंग है। इसलिए प्रकाश की व्यवस्था हेतु एक अलग तकनीशियन की आवश्यकता होती है जो कि मंच पर न होते हुए भी अपने प्रकाश के प्रभाव से दृश्य को सारगर्भित बनाता है। इसलिए इसके लिए अनुभवी तकनीशियन की आवश्यकता होती है। यह नाट्य–निर्देशक द्वारा कहानी के अनुसार पूर्व में प्रकाश संचालक को समझाई जाती है और इसकी पात्रों के साथ पूर्व में तैयारी या रिहर्सल की  जाती है।

आज नाटक में दिन–प्रतिदिन नई–नई तकनीकों का समावेश होता जा रहा है जिसमें कम्प्यूटर तथा प्रोजेक्टर आदि की सहायता से मंच पर बहुत ही यथार्थ असंभव समझे जाने दृश्य भी मंच पर दिखाये जा सकते है। यथा एक सुन्दर नाट्य प्रस्तुति हेतु नाटक को उपरोक्त सभी तत्वों का आपस में सामंजस्य अति आवश्यक है। तब ही एक सफल नाटक प्रस्तुत किया जा सकता है।

नाट्य प्रस्तुति के पूर्व की तैयारी – नाटक की प्रस्तुति के पूर्व में नाटक के सभी तत्वों सहित कई–कई बार दौहरान अर्थात् रिहर्सल की जाती है। जिसमें संवाद बोलना, चरित्र के अनुसार चलना, बैठना, आदि–आदि का निर्देशक के बताये अनुसार पात्रों को करना होता है। जिससे की प्रस्तुत के समय पात्र संवाद नहीं भूले तथा नाटक हास्यास्पद नहीं हो।

चूंकि नाटक एक जीवन्त रचनात्मक कार्य है। इसमें पात्र और दर्शक आमने–सामने होते है, इसलिए उनको ध्यान में रखते हुए पूर्व में हर तरह की तैयारी कर लेनी चाहिए वरना नाटक प्रभावी नहीं हो पायेगा। इय हेतु सभी पात्रों व तकनीशियन के मध्य पूर्व में ही कार्य बाँट दिये जाते है। और उन सभी से यह अपेक्षा की जाती है कि सभी अपने–अपने कार्य को पूरी लगन व निष्ठा के साथ करेंगे नहीं तो एक की भी गलती पूरे नाटक या दृश्य को खराब कर सकती है। इसी प्रकार नाटक के पात्र अपने–अपने चरित्र का गहन अध्ययन करते हैं, जिससे की नाटक जीवन्त हो सके। अच्छी प्रस्तुति हेतु पात्रों को नव रसों का तथा तकनीकों का ज्ञान आवश्यक है। इसके द्वारा ही पात्रों के अभिनय से दर्शकों तक चरित्रों का प्रभाव पूरी तरह से पहुँच सके।

**कुछ प्रमुख नाटक की प्रमुख विधाएँ जो प्रचलित है वे इस प्रकार है–**

**एकांकी –**

एकांकी नाटक में नाटककार द्वारा कहानी को एक अंक या दृश्य के द्वारा दिखाया जाता है। इसकी समय सीमा लगभग (10) दस मिनट से (30) तीस मिनट तक हो सकती है।

**एकांकी का अर्थ** – "एक ही अंक में पूरा होने वाला (दृश्य काव्य या नाटक) छोटा नाटक जिसमें एक ही अंक हो एकांकी नाटक की श्रेणी में आता है।"

अर्थात् इसमें कहानी को एक ही अंक में पूरा करना होता है। उदाहरण – (1) रामायण एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है और इसमें कई घटनाओं का विस्तार से वर्णन है। परन्तु यदि हमें एकांकी नाटक में प्रस्तुत करना है तो इसमें रामायण की कोई भी घटना को एक अंक में दिखाते हुए उस घटना का उद्देश्य दर्शकों तक पहुँचाना जैसे सीता स्वयंवर, सीता हरण, लक्ष्मण को शक्ति बाण लगना आदि।

इसी प्रकार महाभारत का कोई भी एक अंक या घटना को किसी भी चरित्र को मुख्य रूप से केन्द्र में रखकर उस पात्र के मुख्य चरित्र को प्रमुखता से दर्शाते हुये उसके मनोभावों का दृश्यांकन करना जैसे द्रोपदी का चीर–हरण, कर्ण कवच कुण्डल दान, भीम की प्रतिज्ञा आदि दिखाना।

ये एकांकी नाटक लघु नाटकों की श्रेणी के अन्तर्गत आते है। जिनकी अवधि लगभग 30 मिनट होती है। इनके विषय अधिकतर सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक हो सकते है। जिससे कि समाज में संदेश जाये। एकांकी नाटकों में पात्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं होती है केवल मूल भावना को ध्यान में रखते हुये उसे प्रभावोत्पादक बनाई जाती है। इसमें संवाद भी बहुत बड़े–बड़े नहीं होते है। इस तरह के नाटकों का एक मात्र उद्देश्य कम समय में अपनी बात या संदेश दर्शकों के मध्य में पहुँचाना होता है।

एकांकी नाटकें के द्वारा रचनात्मकता आती है। इसलिए इस प्रकार के नाटकों को विद्यार्थियों को अपने विद्यालय में खेलने चाहिए। इन नाटकों की सहायता से एक दूसरे विद्यार्थी के मध्य सामंजस्यता बनाने में मदद मिलती है।

चूंकि एकांकी नाटकों की समय सीमा कम होती है ये लघु नाटकों के अन्तर्गत आते है इसलिए इनकी प्रस्तुति विद्यार्थियों द्वारा प्रार्थना सभा के दौरान कर सकते है। जिससे बाकी विद्यार्थियों में भी जागरूकता आये और एक अच्छे नागरिक बन सके।

नाटक विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का एक सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। नाटक की वजह से विद्यार्थी में आत्म विश्वास का संचार होता है। वह अपने आपको अच्छे से प्रदर्शित कर सकता है। विद्यार्थी स्वयं

अपनी समस्याओं को लेकर अपनी ही कक्षा के छात्रों के साथ स्वयं नाटक लिखकर हिन्दी के अध्यापक या अध्यापिका की सहायता से विद्यालय में एक रचनात्मक वातावरण का निर्माण कर सकता है।

विद्यार्थी अपनी पाठ्यपुस्तक से कहानी लेकर नाट्य प्रस्तुति कर सकता है अथवा पुस्तकालय से अच्छे एकांकी की पुस्तक लेकर कुछ अच्छे लेखक उपेन्द्रनाथ 'अश्क' अशोक चक्रधर .......... आदि के नाटकों का मंचन अपने विद्यालय में कर सकते है।

## एकाभिनय –

अभिनय नाटक का प्रमुख तत्व होता है। एकाभिनय का अर्थ "जब एक ही अभिनेता मंच पर विभिन्न चरित्रों का अभिनय करता है वह एकाभिनय के अन्तर्गत आता है।" एकाभिनय अभिनय की एक ऐसी विधा है जो आज के समय में बहुत प्रचलित हो गयी है। इसे (Solo Act) भी कहते है। यह विद्या भी आवश्यकता के अनुसार ही जन्मी है। पूर्व में अभिनेता को जो नाटक–नौटंकी करते थे उन्हें समाज में उतना सम्मान नहीं मिलता था। इसलिए नाट्य अभिनय को बहुत कम लोग व्यवसाय के रूप में अपनाते थे। परन्तु धीरे–धीरे पत्र–पत्रिकाओं और टी.वी. इन्टरनेट में बहुत परिवर्तन कर दिया है। जिससे इस क्षेत्र में भी बहुत अच्छे घरानों के युवा इसे व्यवसाय के रूप में अपनाकर ख्याति अर्जित कर रहे है।

क्योंकि नाटक में बहुत सारे पात्रों एवं तकनीशियनों की आवश्यकता होती है क्योंकि किसी भी कहानी में बहुत सारे पात्र होते है। और नाटक मे आज भी कम ही लोगों की अभिरूचि होती है। इसलिए नाटक मे पात्रों हेतु अभिनेता आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाते है, इस कारण अलग–अलग पात्रों का अभिनय एक ही अभिनेता द्वारा किया जाता है। आगे चलकर इसे एकाभिनय का विकास हुआ। एकाभिनय में एक ही कलाकार विभिन्न पात्रों का अभिनय करता है। जैसे हम भी प्रायः अपने आम जीवन में हँसी–हँसी में अन्य अनेक व्यक्तियों की नकल करते है। छोटे बच्चे मजाक–मजाक में दादाजी का चश्मा लगाकर, छड़ी लेकर दादाजी की ही तरह चलना, बोलना तथा उनकी तरह व्यवहार आदि क्रिया कलाप करते है। साथ ही साथ अपना स्वयं का चरित्र भी अभिनीत करते है, इसी तरह से एकाभिनय में भी विभिन्न पात्रों की कल्पना कर उनका अभिनय एक ही अभिनेता के द्वारा किया जाता है।

एकाभिनय में सहपात्र के रूप में अन्य अनेक सामग्री जैसे – वेश–भूषा, संगीत तथा प्रकाश व अन्य वस्तुओं का उपयोग कर मंच पर खड़े–खड़े ही एक पात्र से दूसरे पात्र के चरित्र में प्रवेश कर उसका अभिनय भी वही पात्र अपनी चाल, अपने संवाद बोलने का तरीका तथा मुख मुद्राओं के द्वारा अलग पात्र

की कल्पना को दर्शकों के मध्य अपने स्वयं के माध्यम से पहुँचाता है।

आज भागदौड़ भरी जिन्दगी में एकाभिनय का चलन अधिक हो चला है इसमें चूंकि बहुत अधिक कलाकारों की आवश्यकता नहीं होती इसलिए जिस किसी भी अभिनेता में नाटक के प्रति अधिक दीवानगी होती है वही इस ओर अग्रसर होता है। जिससे अभिनेता के अभिनय क्षमता का भी पता चलता है।

### लोक नाट्य –

साधारण जन द्वारा साधारण जन के लिए किया गया मनोरंजक नाटक लोक नाट्य कहलाता है। अर्थात् स्वयं के द्वारा स्वयं के समूह के लोगों की स्वंय के लोगों के लिए किया गया मनोरंजक अभिनय प्रस्तुति लोक नाट्य के अन्तर्गत आता है।

लोक नाट्य का जन्म जन सामान्य के मध्य से ही परम्परागत रूप से होता है। यह कला किसी विद्यालय में नहीं सीखी जाती यह तो पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली कला है। इसमें दादा से पिता, पिता से पुत्र और इसी तरह से आगे से आगे बढ़ती चली आती है।

लोक नाट्य में अधिकतर वीर पूजा की भावना के साथ कला, संगीत नृत्य, अभिनय और काव्य का समन्वय रहा है। जहाँ कवि, लेखक और अभिनेता अपने काव्य संगीत और अभिनय के द्वारा गोगा जी, पाबूजी राठौड, पृथ्वीराज रासो, तेजाजी, अमरसिंह डूँग जी, झुँवार जी, भूरा जी आदि वीरों के पौरूष के गुण गाते और अभिनय करते है। यहाँ अधिकतर ग्रामीण जन दर्शक रूप में अभिनय के माध्यम से अपने आदर्श वीरों के रंगमंच पर दर्शन करना चाहते है।

लोक नाट्य में लोक देवी–देवता आदि के चमत्कारों व वीरता के किस्से कहानियों का प्रभाव अधिक रहता है। जिससे जनमानस की भावनाऐं जुड़ी रहती है। लोक नाट्यों में लोक देवी–देवताओं और वीर पुरूषों के पात्रों का अभिनय जन सामान्य में से ही कुछ लोगों द्वारा किया जाता है। उनकी वेश–भूषा आदि भी उन लोक देवी–देवताओं की तरह की ही होती है। इन प्रस्तुतियों में ये मुखौटों का भी उपयोग करते है। इसमें ये उनके जीवन चरित्र को नाच–गाकर अभिनीत किया जाता है। इसमें संगीत हेतु लोक वाद्य यंत्रों का ही उपयोग किया जाता है। यह पूरी तरह से संगीतमयी प्रस्तुति होती है। ये आमतौर पर लोकोत्सवों, त्यौहारो या फसल कटाई के अवसरों पर खेला जाता है। ये कला पहले पूरी तरह से अव्यवसायिक होती थी। परन्तु आधुनिकता की अन्धी दौड़ में हम हमारे वीर पुरूषों और लोक देवताओं की ओर से उदासीन हो गये है, इसलिए कुछ लोगों ने इसे आज व्यवसाय के रूप में अपनाकर देश–विदेश में

ख्याति अर्जित की है।

लोक नाटक के लिए विशेषतः आधुनिक मंच की आवश्यकता नहीं होती है ये अपनी कला का प्रदर्शन बहुत छोटी सी जगह में भी प्रभावी ढंग से कर सकते है। ये अधिकतर तमाशा शैली में किया जाता है। इसके अन्तर्गत संवाद से लेकर वाद्य यंत्रों आदि का बजाना तथा अपने आप को अभिनय के लिए तैयार करना आदि सभी कार्य स्वयं के द्वारा ही किये जाते है। लोक नाट्यों में रामलीला, रासलीला, रास, कठपुतली, ख्याल, तुर्रा कलंगी आदि विद्याओं के द्वारा प्रभावी प्रस्तुति दी जाती है। आदिवासी और ग्रामीण जन–जीवन का अभिन्न अंग है। अलग–अलग जाति व कबीलों में अलग–अलग देवी–देवताओं और उनकी मान्यता के अनुसार ये अपनी विभिन्न प्रचलित शैलियों की प्रस्तुति देते है।

### नुक्कड़ नाटक –

नुक्कड़ नाटक, नाटक की ऐसी विधा है जिसमें पात्र व दर्शक में सीधा संवाद होता है। आधुनिक इन्टरनेट के युग में नुक्कड़ नाटक अपनी अलग विशेष पहचान स्थापित कर चुका है। कहने का अर्थ है कि आज की दुनिया का संवाद का सबसे सशक्त माध्यम है।

जन जागृति और लोकमत तैयार करने में नुक्कड़ नाटक ने अपना अलग स्थान बना लिया है। भारत में नुक्कड़ नाटक के माध्यम से राजनीतिक व सामाजिक जन जागृति की शुरूआत का श्रेय सफदर हाशमी को जाता है। जिन्होंने अपने जीवन काल में बहुत नुक्कड़ नाटक किये और अपने विचारों से जनता को जागृत किया।

राजस्थान में भी नुक्कड़ नाटकों के क्षेत्र में बंकर रॉय और अरूणा रॉय की समाजिक संस्था एस. डब्ल्यू.आर.सी. तिलोनिया तथा अजमेर की सामाजिक संस्था अपना थियेटर संस्थान अजमेर का नाम अपनी अलग पहचान बना चुका है इस संस्थान के श्री योबी जार्ज नुक्कड़ नाटकों के क्षेत्र में राजस्थान में बहुत ख्याति अर्जित कर चुके है।

नुक्कड़ नाटक में किसी विशेष प्रकार की वेशभूषा आदि की आवश्यकता नहीं होती है ना ही किसी विशेष मंच की। नुक्कड़ नाटक गाँवों और शहरों के नुक्कड़ों चौराहों, चौक–चौपालों आदि पर जहाँ लोगों का आना–जाना लगा रहता है वहाँ किया जा सकता है। नुक्कड़ नाटक के लिए पाँच, छः कलाकारों की आवश्यकता होती है, तथा वाद्य यंत्रों में केवल ढोलक व हारमोनियम ही पर्याप्त होता है। कलाकार साधारण वेश–भूषा में ही रहते है।

सबसे पहले नाच–गाकर एक भूमिका अर्थात् माहौल तैयार किया जाता है। और कुछ मंनोरजक हँसी–मजाक के द्वारा लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया जाता है इसके साथ ही हल्के वातावरण में ही नाटक में अभिनेताओं के द्वारा अपने विचार लोगों तक सरल तरीके से पहुँचा दिये जाते है। इसमें सभी पात्र सांकेतिक अभिनय से चरित्र प्रस्तुत करते है। पुरूष ही महिला चरित्र का अभिनय कर सकते है। केवल एक दुपट्टे के माध्यम से सिर ढक कर महिला पात्र दर्शाया जा सकता है।

कभी–कभी चलते नाटक में भीड़ में से कुछ लोग प्रश्न भी पूछ सकते है, जिसे तुरन्त कलाकार जवाब देकर लोगों को अपनी प्रस्तुति से सार्थक बनाता है। इस तरह के नुक्कड़ नाटकों का आयोजन सामाजिक संस्थाओं द्वारा व सरकार द्वारा भी प्रायोजित किये जाते है। जिससे कि सरकार की नीतियों का लाभ जनता तक पहुँच सकता है। तथा समाज में व्याप्त बुराईयों को भी हम नुक्कड़ नाटक के द्वारा समाज के सामने ला सकते है।

जाने समझे और करे – नाटक संवाद का एक सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा आप अपने सहपाठियों की टीम (समूह) बनाकर विद्यालय की समस्याओं आदि पर अपने विचार से लेखन करे, पात्रों का चयन करे, और अपने हिन्दी के अध्यापक/अध्यापिका की सहायता से नाटक खेला जा सकता है।

इसके लिए नाटक की कोई भी शैली अपना सकते है। फिर वो एकांकी हो, एकाभिनय हो, लोक शैली हो अथवा नुक्कड़ नाटक शैली आपका उद्देश्य तो केवल अपनी अभिनय प्रतिभा द्वारा अपने विचारों को दूसरे विद्यार्थियों और लोगों के मध्य रखकर अपनी समस्याओं आदि से परिचित करा सकते है।

## महत्वपूर्ण बिन्दु :

नाटक का लेखन सरल भाषा में होना चाहिए जिससे कि सभी उसे आसानी से समझ सके। एक नाटक में केवल एक ही विषय या समस्या को मुख्य केन्द्र में रखकर नाटक की रचना करनी चाहिए। पात्रों का चयन चरित्र के अनुसार ही करना चाहिए। क्योंकि विद्यालय की अपनी सीमाएँ होती है, इसलिए साधारण और सादगीपूर्ण व कम चीजों के उपयोग द्वारा अधिक प्रभाव दिखाने की कोशिश करनी चाहिए। नाटक एक रचनात्मक विधा है इसलिए इसके द्वारा आप अपने विद्यालय में अलग पहचान बना सकते है।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. एकांकी नाटक का अर्थ है–

(अ) एक पात्र (ब) एक अंक

(स) एक कहानी (द) एक कविता

2. नुक्कड़ नाटक खेला जा सकता है–
   (अ) घर पर (ब) आधुनिक मंच पर
   (स) चौराहों और चौपालों पर (द) अकेले में
3. नाट्यशास्त्र के रचयिता है–
   (अ) भरतमुनि (ब) अभिनव गुप्त
   (स) आनन्द वर्धन (द) भट्ट नायक
4. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय स्थित है–
   (अ) जयपुर में (ब) दिल्ली में
   (स) मुम्बई में (द) पूना में
5. लोक नाट्य का सम्बन्ध है–
   (अ) राजा से (ब) भगवान से
   (स) जनसाधारण से (द) एक परिवार से

**अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –**

1. अभिनव भारती के लेखक कौन है?
2. अभिनय करने वाले को क्या कहते है?
3. जिस चरित्र का अभिनेता अभिनय कर रहा होता है उसे क्या कहते है?
4. रूप सज्जा क्या है?
5. दर्शक किसे कहते है?
6. नट–नटी क्या है?
7. मंच किसे कहते है?
8. सफदर हाशमी कौन थे?
9. वाद्य यंत्र क्या है?
10. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय किस मंत्रालय के अधीन आता है?

**लघूत्तरात्मक प्रश्न –**

1. नाट्य लेखन क्या है?
2. एकांकी किसे कहते है?
3. एकाभिनय से आप क्या समझते है?
4. लोक नाट्य से आपका क्या अभिप्राय है?
5. मंच सज्जा से क्या अर्थ है?

6. नुक्कड़ नाटक किसे कहते है?
7. संवाद क्या होता है?
8. अभिनय किसे कहते है?
9. नाटक में वेश–भूषा का क्या महत्व है?
10. प्राचीन काल में मनोरंजन के मुख्य साधन क्या थे?

## निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाटक के लिए आवश्यक तत्वों को विस्तार से लिखिये।
2. नुक्कड़ नाटक क्या है?इसकी आवश्यकता व इससे कार्य प्रभाव को समझाइये।
3. नाटक से आप क्या समझते है?विस्तार पूर्वक समझाइये।
4. एकाभिनय क्या है?यह क्यों प्रचलन में आया विवेचना कीजिये।
5. नाटक सम्वाद का एक सशक्त माध्यम है। विवेचना कीजिये।

## उत्तरमाला बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. ब 2. स 3. अ 4. ब 5. स